वर्ष ५ जम्मू - काश्मीर से प्रकाशित एकमात्र हिन्दी मासिक

धर्मो

रक्षति

रक्षितः

●

काश्मीर अंक

●

धर्मार्थ ट्रस्ट

प्रकाशन

जम्मू

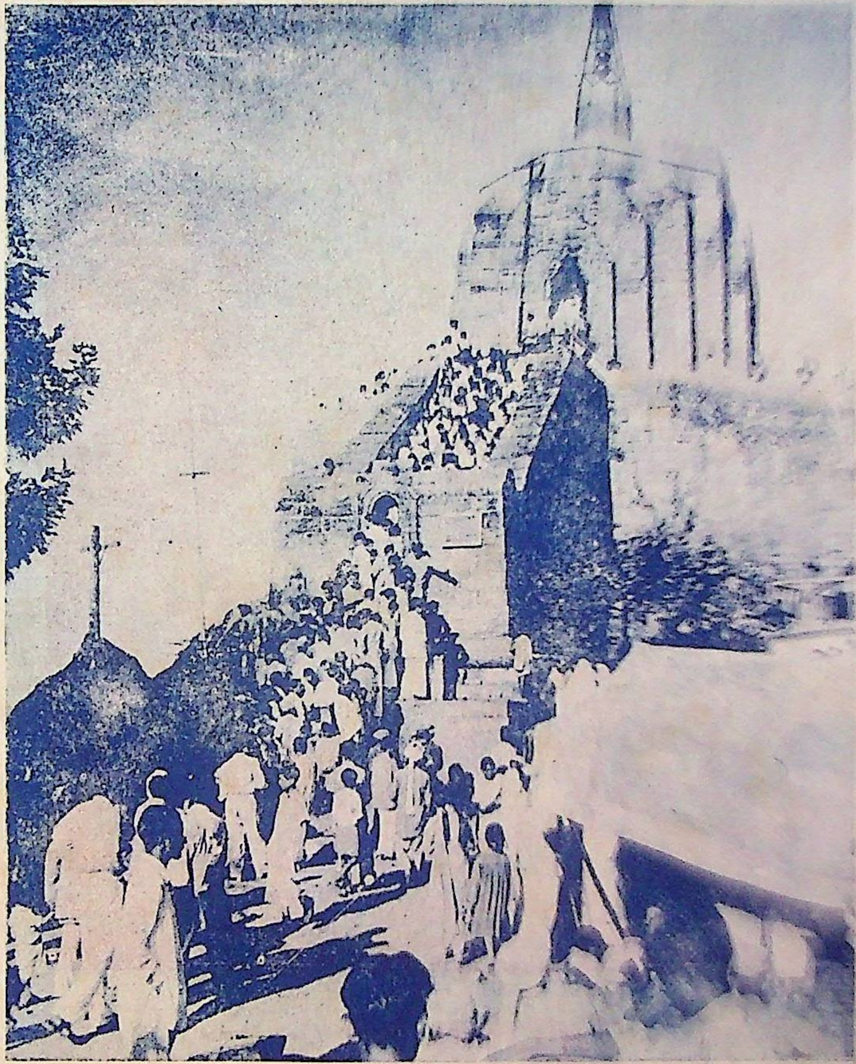

शंकराचार्य मन्दिर

श्रीनगर

धर्ममार्ग

वर्ष ५ | जम्मू - काश्मीर से प्रकाशित एकमात्र हिन्दी मासिक | अंक १

धर्मो रक्षति रक्षितः

●

काश्मीर अंक

●

धर्मार्थ ट्रस्ट प्रकाशन जम्मू

शंकराचार्य मन्दिर
श्रीनगर

धर्मो रक्षति रक्षितः

●

मार्च १९७१

●

एक प्रति : ६० पैसे
वार्षिक : ७ रुपये

●

धर्म मार्ग

वर्ष ५ मासिक मार्च १९७१ अंक १

सुकराला देवी

जम्मू

सम्पादक
विद्या सागर शर्मा

प्रबन्ध सम्पादक
राजेन्द्र मोहन कौशिक

अपनी बात

नौ मार्च धर्म मार्ग के जन्मदाता डॉ. कर्ण सिंह जी का जन्म दिवस है। आप ने आज से ठीक चालीस वर्ष पूर्व १९३१ में फ्रांस के कान्स नामक नगर में जन्म लिया। अभी आपकी शिक्षा-दीक्षा चल ही रही थी कि आपको जम्मू-काश्मीर के संवैधानिक प्रमुख का कार्यभार सम्भालना पड़ा। राज्य की विशेष राजनीतिक परिस्थितियों में कार्य करते हुए भी आप ने अपने व्यक्तित्व के आध्यात्मिक एवं साहित्यिक पक्ष का जिस सर्वांगीणता से विकास किया, वह एक अनूठा आश्चर्य है।

गीता में भगवान कृष्ण ने मानव-जन्म का उद्देश्य प्रतिकूल परिस्थितियों में भी समत्वयात्मक मानसिक संतुलन की उपलब्धि बताया है। डॉ. कर्ण सिंह जी में गीता अपने वास्तविक रूप में साकार हो उठी है। वह राष्ट्र-नायक तो हैं ही पर उस से भी ऊपर बुद्धि और चेतना के धरातल पर जो ब्रह्मरूपिणी शक्ति अखिल विश्व में निवास करती है उसके प्रतिनिधि हैं। हमारे लिए वह आदर्श रूप हैं। उनके निकट जायं तो हम सराबोर हो उठते हैं और दूर रहने पर भी हमें उनकी निकटता का ही आभास होता है। जहां अन्तर में झांकने की शक्ति है वहां दूरी का कोई महत्व नहीं।

अपने जीवन के ४१वें वर्ष में प्रवेश करने पर हम उन्हें समस्त धर्म मार्ग परिवार की ओर से बधाई देते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे संरक्षक को दीर्घायु प्रदान करें।

—सम्पादक

भगवान प्रसाद

काश्मीर का गौरवशाली अतीत

चौथी से दसवीं शताब्दी का युग काश्मीर में कला एवं साहित्य का अभिनव सर्जन-काल था। वही समय भारतीय संस्कृति के प्रसार का स्वर्ण-युग भी था। काश्मीर ने समस्त मध्य एशिया और चीन में अपने संस्कृति-दूत भेजे। काश्मीर के उत्तर में चीनी तुर्किस्तान, खोतन, तिब्बत, मगोलिया, चीन, जापान आदि देशों को काश्मीर के विद्वान ब्राह्मण जाया करते थे। खोतन में काश्मीरी ब्राह्मणों की एक शाखा ने अपना उपनिवेश कायम कर लिया था। उनकी कृतियों का इतिहास एशिया के इतिहास का स्वर्ण-पृष्ठ है। तिब्बत की वर्णमाला का आविष्कार और परिमार्जन खोतन के एक प्रसिद्ध कवि कश्मीरी विद्वान ब्राह्मण ने किया था। तिब्बत के भित्ति-चित्रों का आलेखन अधिकतर कश्मीरी चित्रकारों की सुकृति है।

यह विश्वास किया जाता है कि प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की परम्परा का अभाव था। काश्मीर ने ही भारत का प्रथम इतिहास लेखक पैदा किया और वह व्यक्ति था कल्हण जिस ने विश्व प्रसिद्ध "राजतरंगिणी" लिखी और जिस परम्परा का अनुसरण कर फारसी के प्रसिद्ध कवि फिरदौसी ने "शाहनामा" राजाओं का इतिहास लिखा। 'राजतरंगिणी' के अनुसार आज जहां काश्मीर की सुरम्य उपत्यका है वहां किसी समय झील थी जिसको कश्यप ऋषि ने अपने योग-बल से सुखा दिया और भूमि निकाली। इसी मान्यता के आधार पर 'काश्मीर' शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है।

"राजतरंगिणी" के लेखक कल्हण का मत है कि काश्मीर के निवासी 'नाग' जाति के थे। यद्यपि नाग जाति के लोग आर्य थे तथापि नाग-पूजा से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। काश्मीर के आदि निवासी आर्य थे और नृतत्वशास्त्र के अनुसार उन में गान्धारी, दरयास, खसा और मंगोल जातियों का बाहुल्य है। आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि 'खसा' जाति की प्रमुखता के कारण इस प्रदेश का नाम काश्मीर रखा गया होगा।

पुराणों में वर्णित जल-देवियों अर्थात अप्सराओं का निवास कश्मीर के पुष्करों—कमल सरोवरों—में बताया जाता है। पुष्करावती (पुष्कलावती) क्षेत्र का सम्बन्ध सिन्धु-घाटी-सभ्यता से था। यह नगर उस समय व्यापार का महान केन्द्र-स्थल था। ईसा पूर्व ५१८ में ईरानी शासक डेरियस के राज्य में सिन्धु नदी का पश्चिमी भाग बीसवें प्रान्त के रूप में था। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस का कथन है कि इस प्रान्त का खिराज (कर) ३६० तोड़े—नौ टन स्वर्णधूलि था जो सिन्धु नदी के उपरी भाग की मिट्टी धो कर निकाली जाती थी अथवा तिब्बत या काश्मीर की घाटी को खोदने से प्राप्त की जाती थी।

काश्मीर का ऐतिहासिक अवशेष सम्राट अशोक के युग का प्राप्त होता है। सम्राट अशोक के भेजे हुए धर्मप्रचारक काश्मीर भी गये। बौद्ध धर्म का एक समय वह आया जब उसकी महायान शाखा का मुख्य केन्द्र कश्मीर बन गया। उस समय मध्य एशिया से काशी (वाराणसी) तक समस्त उत्तर भारत कनिष्क के साम्राज्य में सम्मिलित था। धर्म-औदार्य के इस पुरातन देश में बौद्ध धर्म के साथ साथ हिन्दू धर्म भी पल्लवित एवं पुष्पित होता रहा। कनिष्क द्वारा महायान बौद्ध धर्म का प्रसार एशिया के अनेक देशों में कश्मीर से ही किया गया। कुषाण-वंशीय राजाओं के शासन-काल में मध्य एशिया की तारिम घाटी का आर्यीकरण हुआ। इस युग में बहुत से बौद्ध विद्वान और यात्री एक ओर कश्मीर से उड्डीयान, कापिश बामियान जाते थे तो दूसरी ओर खोतन, कुच तथा कासगर भी जाते थे। २३० ईस्वी में कुषाण-सम्राट वासुदेव द्वितीय ने अपना दूत चीन देश भेजा था। तीसरी शताब्दी के अन्त तक चीन में १८६ बौद्ध मठ निर्मित हो चुके थे और ३.७०० भारतीय बौद्ध-धर्म प्रचार कार्य में लगे हुए थे।

चौथी से दसवीं शताब्दी का युग काश्मीर में कला एवं साहित्य का अभिनव-सर्जन-काल था। वही समय भारतीय संस्कृति के प्रसार का स्वर्ण-युग भी था। काश्मीर ने समस्त मध्य-एशिया और चीन में अपने संस्कृति-दूत भेजे। काश्मीर के उत्तर में चीनी तुर्किस्तान, खोतन, तिब्बत, मंगोलिया, चीन, जापान आदि देशों को काश्मीर के विद्वान ब्राह्मण जाया करते थे। खोतन में काश्मीरी ब्राह्मणों की एक शाखा ने अपना उपनिवेश कायम कर लिया था। उनकी कृतियों का इतिहास एशिया के इतिहास का स्वर्ण-पृष्ठ है। तिब्बत की वर्णमाला का आविष्कार और परिमार्जन खोतन के एक प्रसिद्ध काश्मीरी विद्वान ब्राह्मण ने किया था। तिब्बत के भित्ति-चित्रों का आलेखन अधिकतर काश्मीरी चित्रकारों की सुकृति है।

एशिया में बौद्ध धर्म का सब से महान प्रचारक कुमारजीव भी काश्मीरी था। उसका पिता कुमारायण काश्मीर के राजा का मन्त्री था। वह पद-त्याग कर मध्य एशिया के कुचा राज्य चला गया। चौथी तथा पांचवीं शती में यह राज्य बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्म का बड़ा

भारी केन्द्र था। कुमारायण की प्रतिभा से प्रभावित हो कर कुचा के राजा ने उसे अपना राजगुरु बना लिया। काश्मीरी मन्त्री का व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक था। कुचा की राजकुमारी जीवा उस से बहुत प्रभावित तथा मुग्ध हो गई। कुछ समय के बाद कुमारायण और जीवा का विवाह हो गया। उन्हीं से कुमारजीव का जन्म हुआ। पुत्र-जन्म के बाद जीवा बौद्ध-भिक्षुणी बन कर काश्मीर चली आई।

जब कुमारजीव अपनी माता के साथ काश्मीर आया तो उसकी आयु नौ वर्ष थी। कुशाग्र-बुद्धि बालक कुमारजीव ने काश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान पण्डित बन्धुदत्त के शिष्यत्व में रह कर साहित्य, दर्शन तथा विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया और असीम ज्ञान प्राप्त कर कुचा चला गया। वहीं पर उसने बौद्ध धर्म का दीक्षा ले ली।

चीन के राजा ने ३८३ ईस्वी में कुचा पर विजय के लिए लुक्यांग नामक अपने सेनापति को भेजा। कुचा का राजा पराजित हो गया। लुक्यांग अपने साथ विद्वान कुमारजीव को अपने साथ चीन ले गया। कुमारजीव चीन में तीस वर्षों तक रहा और उसने पाली तथा संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। चीन तथा जापान से बहुत से विद्वान उसके पास उच्च शिक्षा के लिये आते थे। चीन में बौद्ध धर्म के प्रसार में कुमारजीव का योगदान अद्वितीय है। केवल "बज्रच्छेदिक" नामल ग्रन्थ के उनके अनुवाद से चीन के शिष्ट वर्ग में बौद्ध धर्म का जितना प्रसार हुआ उतना सभी ग्रन्थों के अनुवाद से नहीं हुआ।

कुमारजीव का एक और समकालीन काश्मीरी ब्राह्मण बुद्धयश विद्याध्ययन के बाद कासगर चला गया। कासगर के शासक ने अपनी राजधानी में बौद्ध-धर्म का एक सम्मेलन आयोजित किया था जिस में बुद्धयश भी सम्मिलित हुये। यहीं पर कुमारजीव से उनकी प्रथम भेंट हुई। चीन में बौद्ध धर्म-ग्रन्थों के अन्तिम वर्षों में वह काश्मीर चला आया था। मध्य एशिया के कई राजाओं का श्रद्धा-पात्र होते हुए भी उसने किसी राजा या धनी की भेंट स्वीकार नहीं की। वह दृढ़-संकल्प तथा निर्लिप्त वृत्ति का धनी था।

सारा चीनी तुर्किस्तान काश्मीरी व्यक्तियों का उपनिवेश बन गया था। उन में भारत के अन्य प्रांतों के लोग भी थे, किन्तु अधिकांश काश्मीर के बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्मावलम्बी वहां जा कर बस गये थे। वे लोग भागवत धर्म के साथ बौद्ध-धर्म का भी प्रचार करते थे।

बामियान (अफगानिस्तान) में भगवान बुद्ध की ६० मीटर ऊंची विशालकाय मूर्ति, मध्य एशिया के असंख्य ध्वस्त स्तूप तथा रेशमी मार्गों से आने-जाने वाले भारतीय धर्मोपदेशकों और यात्रियों के इतिहास के आधार पर यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भारत की उत्तरी-पश्चिमी उपत्यका के जिन निवासियों ने मध्य एशिया में बौद्ध धर्म का

प्रचार किया, उन्होंने ही मानीवाद को प्रभावित किया, उनका यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम पर भी प्रभाव पड़ा होगा।

चीन के समस्त बौद्ध वाङ्मय में "द्वितीय बुद्ध" का उल्लेख मिलता है। यह दूसरा बुद्ध अपनी अपूर्व बौद्धिक एवं आध्यात्मिक प्रतिभा के लिये सम्पूर्ण पूर्वी एवं दक्षिणी एशिया में विख्यात हो गया था। उस प्रभा-पुंज का नाम गुणवर्मन था और वह काश्मीर के राज-परिवार में उत्पन्न हुआ था। तथागत की मैत्री और करुणा के सन्देश से वह प्रभावित हो कर राजकीय वैभव का त्याग कर बौद्ध भिक्षु बन गया था। राजा की मृत्योपरान्त मन्त्रिपरिषद ने उसे सिंहासन पर बिठाना चाहा किन्तु उसने इन्कार कर दिया और अरण्य-वासी हो लंका चला गया। लंका से वह जावा गया और वहां के राजा और राजमाता को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी। अहिंसा का उपदेश पाये हुये राजा ने अपने देश पर आक्रमण करने वाले का प्रतिरोध करने में झिझक का प्रदर्शन किया। किन्तु गुणवर्मण ने उसका सन्देह दूर कर दिया और जावा के राजा ने आक्रमण का सामना किया और विजयश्री प्राप्त की। उनके सद्प्रयास से जावा में बौद्ध धर्म का प्रसार हो गया और सारे महायानी बौद्ध जगत में गुणवर्मन को बुद्ध का अवतार माना जाने लगा। नानकिंग के बौद्धों ने चीन के राजा पर बहुत ज़ोर दिया कि गुणवर्मन को चीन में बुलाया जाय अतः ४२४ ईस्वी में चीनी सम्राट ने अपना राजदूत गुणवर्मन को जावा से आमन्त्रित कर बुलाने के लिए भेजा।

नन्दिन नामक एक भारतीय व्यापारी के जहाज़ में बैठ कर गुणवर्मन सात वर्ष में अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुये नानकिंग पहुंचे। उनका स्वागत करने के लिए राजा स्वयं नगर के बाहर गया। गुणवर्मन को 'जेतवन बिहार' में ठहराया गया। इस मठ का नाम श्रावस्ती के प्रसिद्ध बिहार के नाम पर रखा गया था। नानकिंग पहुंचने के एक वर्ष के भीतर ही गुणवर्मन का देहावसान हो गया। इस अल्पकाल में ही उन्होंने ग्यारह संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया।

सातवीं शताब्दी में दुर्लभवर्द्धन ने काश्मीर में कार्कोटक अथवा नागवंश की स्थापना की। इस वंश में ललितादित्य मुक्तापीड अत्यन्त प्रतापी एवं विद्यानुरागी राजा हुआ। उस ने कन्नौज के राजा यशोवर्मन को युद्ध में पराजित किया। कल्हण तथा बिल्हण उसके राज्याश्रित कवि एवं लेखक थे। इस वंश के राज्यकाल में वामन, दामोदर, रत्नाकर आदि विद्वान राजाओं की सभा में रहते थे। ललितादित्य साहित्य एवं कला का संरक्षक था। हुविष्कपुर तथा अन्य स्थानों पर उसने बौद्ध-विहारों तथा ब्राह्मण-मन्दिरों का निर्माण कराया। हिन्दू-मन्दिरों में मार्तण्ड-मन्दिर सब से अधिक प्रसिद्ध है।

जयापीड विनयादित्य इस वंश का सब से प्रभावशाली राजा हुआ। वह विद्यानुरागी

एवं विद्वानों का आश्रयदाता था। ऊपरवर्णित वामन, दामोदर और क्षीरस्वामिन उद्भट उसी की सभा के रत्न थे। जयापीड ने कन्नौज तथा गौड़ के राजाओं को पराजित किया था। उसी की भान्ति अवन्तिवर्मन भी काश्मीर का प्रतापी राजा हुआ। वह उत्पल वंश का था।

अवन्तिवर्मन का मन्त्री सुय्य था जो प्रसिद्ध अभियन्ता था। उसने काश्मीर की सिंचाई के लिए बहुत सी नहरों का निर्माण किया और वितस्ता-जेहलम-नदी का मार्ग बदल दिया ताकि बाढ़ न आने पाये। भारतीय इतिहास में भागीरथी के बाद कदाचित सुय्य ही काश्मीर की गोद में इन्जीनियर के रूप में हमारे सामने आता है।

दिग्विजय करते हुए स्वामी शंकराचार्य भी कश्मीर में गये थे। उनकी प्रेरणा से काश्मीर में बहुत से देव-मन्दिरों का निर्माण हुआ जिसके कारण काश्मीरी इतिहास में उन्हें "मन्दिर निर्माता शंकराचार्य" के नाम से अभिहित किया जाता है। श्रीनगर के पास स्थित तख्ते सुलेमान नामक पर्वत को आज भी "शंकराचार्य पर्वत" (देखिये मुखपृष्ठ) कहा जाता है। उस पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर बौद्ध एवं ब्राह्मण वास्तुकला के तत्वों के समन्वय का परिणाम एक विचित्र मन्दिर है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध स्तूप के नष्टावशेष पर मन्दिर का निर्माण हुआ है। यह भव्य रचना है जिसका निर्माण पांचवीं शताब्दी में हुआ होगा।

मुस्लिम आक्रमण से काश्मीर बहुत समय तक बचा रहा किन्तु चौदहवीं शताब्दी में वहां भी मुस्लिम राज्य की स्थापना हो गई। यद्यपि उनके आक्रमण के फलस्वरूप बहुत से मन्दिर नष्ट कर दिये गए और उन पर मकबरों और मस्जिदों का निर्माण किया गया किन्तु ज़ैनुलआबदीन जैसे सहिष्णु मुस्लिम शासक के कारण काश्मीर की घाटी में हिन्दू तथा मुसलमान समान रूप से रहते आये हैं। काश्मीर मुगल काल में सम्राटों के आकर्षण और ग्रीष्म ऋतु में निवास का केन्द्र रहा और शाही आश्रय समाप्त होने पर कलाकारों का मुख्य आश्रय बन गया जिसके कारण काश्मीर की घाटी आज भी अपनी प्राकृतिक सुषमा और चित्रशालाओं और शिल्प-सौन्दर्य के लिये अप्रतिम बनी हुई है।

प्राचीन शिला-लेखों से पता चलता है कि संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं तथा महापुरुषों के सम्बन्ध में लिखने की परम्परा का समारम्भ प्रशस्तियों से है। इनका एक-मात्र उद्देश्य था, ललित गद्य अथवा पद्य में किसी शासक विशेष के महनीय कार्यों का मूल्यांकन तथा गुणों का संकीर्तन। प्रशस्तिकार उस शासक की वंशावली भी प्रस्तुत कर देना अपना कर्तव्य समझता था। इस कोटि की प्रथम उपलब्ध कृति है बाण का "हर्षचरित"। इस में महाराज हर्षवर्धन (शिलादित्य) की जीवनकालीन महत्वपूर्ण घटनाओं तथा उनकी वंश-परम्परा का अत्यन्त मनोरम चित्र है। बाण के उपरांत शंकुक सम्भवत: प्रथम कवि हैं, जिन्होंने अपनी काव्यकृति "भुवनाभ्युदय" में मम्म तथा उत्पल नामक शासकों के बीच होने वाले लोमहर्षक संग्राम का चित्रण किया है (राजतरंगिणी)। इस परम्परा की तीसरी रचना है– परिमल पद्मगुप्त का "नवसाहसांक देव चरितम्"। इसकी रचना (लगभग १००५ ई०) कवि ने अपने आश्रयदाता धारा-नरेश महाराज सिन्धुराज परमार (नवसाहसांक) के स्तवन के रूप में की है। इन सभी कृतियों का ऐतिहासिक महत्व उतना नहीं, जितना काव्यात्मक।

महाकवि बिल्हण और "विक्रमांकदेवचरितम्"

●

विशाल प्रसाद त्रिपाठी

●

बिल्हण के "विक्रमांकदेवचरितम्" को भी हम इसी श्रेणी में रख सकते हैं। इस कोटि की अन्य कृतियों की भान्ति इस में भी ऐतिहासिक तथ्य तो स्तोकांश में ही उपलब्ध होते हैं। परन्तु कवि की कला पदे-पदे प्रकट होती है।

"विक्रमांकदेवचरितम्" की रचना बिल्हण ने अपने आश्रयदाता महाराज त्रिभुवन मल्ल (विक्रमांक) के यशोगान तथा उनके महनीय कृत्यों के मूल्यांकन के लिए की है। संस्कृत साहित्य में चरित-काव्यों की समृद्ध परम्परा है। महाभारत में नहीं तो बाल्मीकि की रामायण में निस्सन्देह राम के पावन-चरित का उपनिबन्धन ही कवि को विवक्षित रहा है। कालिदास भी रघुवंश में इसी परम्परा के पोषक हैं।

इन चरित्र काव्यों के दो विभाग किये जा सकते हैं। एक तो वह जिस में कवि अपना नायक किसी पुराण-प्रसिद्ध युवक को चुनता है और इसी के कार्यकलापों का गुम्फन अपनी कृति में करता है। दूसरा प्रकृत काव्य, जिस में चरित-नायक कवि का सम-सामयिक अथवा इतिहास-विश्रुत पुरुष होता है।

राजघराने के युद्ध तथा परिणय ग्रादि ही इस काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य हैं। चालुक्य वंश से इसका प्रारम्भ करके (ज्ञात्वा विधातुश्चुलकात्प्रसूतिं) कवि इस वंश के उद्गम-स्त्रोत तैलपों के वर्णन की ग्रोर झुक जाता है। तलपों का वह ग्रत्यन्त संक्षिप्त वर्णन उपस्थित कराता है। स्फुट घटनाग्रों के द्वारा कवि पाठक को इस वंश से परिचित मात्र कराना चाहता है। विक्रमांक के पिता ग्राहवमल्ल के कार्यों का स्पर्श मात्र करके वह उनके तीनों पुत्रों — सोमेश्वर, विक्रमदेव (त्रिभुवन मल्ल) तथा जयसिंह के जन्म पर आता है राज्यारोहण से पूर्व विक्रम की विजयों, महाराज ग्राहवमल्ल के देहावसान का एक मर्मस्पर्शी चित्र, सोमेश्वर चित्र, सोमेश्वर (द्वितीय) के राजत्वकाल में विक्रमांक के साहसिक कार्य, चौल राजकुमारी के साथ विक्रमांक के परिणय, दक्षिण भारत में इनका साहस-प्रदर्शन तथा सोमेश्वर के साथ प्राणान्तकारी संघर्ष के पश्चात इनकी राज्य प्राप्ति ग्रादि पूर्वार्ध में ग्रौर जयसिंह के विद्रोह के पश्चात उसका पराभव तथा चोलों के साथ इनके ग्रसंख्य युद्ध ग्रादि काव्य के उत्तराध में इतनी सप्राण एवं सुन्दर शैली में उपन्यस्त किये गये हैं कि पाठक विभोर हो उठता है। घटनाग्रों या काल के क्रम ग्रथवा प्रामाणिकता के बारे में सोचने की सुधिबुधि भी पाठक खो बठता है। बिल्हण (कल्हण की भांति) इतिहासकार होने का दावा नहीं करते। परन्तु विक्रमांक द्वारा, रानी चन्द्रलेखा, जो करहाट के राजा सिलहार की पुत्री थी, के जीतने का वर्णन वह साढ़ सात सर्गों में करते हैं। यहां वह दण्डो प्रभृति ग्रालंकारिकों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के नियमों का पालन करते हुए प्रतीत होते हैं। इसी कारण ग्रालोचक इनके काव्य में इतिहास की ग्रपेक्षा काव्यात्मकता को ग्रधिक प्रधान मानते हैं।

बिल्हण ग्रपने पूर्वाचार्यों द्वारा स्थापित महाकाव्य की परम्परा का ग्रनुसरण ग्रवश्य करते हैं किन्तु इस से हम यह धारणा कदापि नहीं बना सकते कि इतिहास को इनकी कुछ देन ही नहीं। इतर काव्य-कृतियों की ग्रपेक्षा इनके काव्य द्वारा निर्दिष्ट ऐतिहासिक सामग्री कहीं ग्रधिक है तथा उसकी प्रामाणिकता में शिलालेख पूर्ण योग देते हैं। यह युद्धादि के पौर्वापर्य की परवाह नहीं करते। विविध घटनाग्रों को क्रम से ग्रनुस्यूत करना तो इतिहासकार का काम है।

बिल्हण को ग्रपने नायक के चरित्र से मानवीय दुर्बलताग्रों को हटाने के लिए तथा उसको ग्रनातसाधारण गरिमा से ग्रभिषिक्त करने के लिए कुछ काल्पनिक बातें भी जोड़नी पड़ी हैं जो इतिहास से बिलकुल मेल नहीं खातीं। उदाहरणार्थ, सोमेश्वर के साथ इनकी सिंहासन-लिप्सा से ग्रभिप्रेरित युद्धों को कवि भगवान शिव की प्रेरणा का परिणाम मानता है। विक्रम की षड़यन्त्रकारी प्रवृत्ति के कारण सोमेश्वर द्वारा उनका राज्य से निष्कासन परम ऐतिहासिक सत्य है, किन्तु बिल्हण इस सत्य पर पर्दा डाल कर इसका कारण स्वयं विक्रमांक की इच्छा बतलाते हैं। इस के ग्रतिरिक्त बिल्हण ग्रपने नायक द्वारा चोलों के ऊपर

विजय का चित्र अत्यन्त ओजस्वितापूर्ण शैली में करते हैं जबकि इतिहास स्पष्ट शब्दों में दुहाई देता है कि चोल सदैव कांचः पर शासन करते रहे।

आचार्य आनन्दवर्धन की उक्ति है :—

अपरि काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः ।
यथस्मै रोचते विश्वं तथैवं परिकल्प्यते ।।

इतिहास के संयोग से काव्य की रमणीयता में वृद्धि भले ही हो सकती हो किन्तु कवि कभी इतिहास के पीछे नहीं पड़ता।

बिल्हण के चित्र कहीं कहीं बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं तथा साथ ही साथ यथेष्ट ऐतिहासिक तथ्यों की ओर भी इंगित करते हैं। उसको समझने के लिये अपेक्षित है नवनवोन्मेष-शालिनो प्रज्ञा। अधोलिखित पद्य काश्मीर की तत्कालीन अशान्ति एवं शासक के अत्याचार पर प्रकाश डाले बिना नहीं रहता।

अयं निदाघस्य तनोति पाटवं समस्तपृथिवीरसकर्षणैः करैः ।
उदचदुच्चण्डतडित्करत्विषामधीशमित्यक्षिपतीव वारिधः ।। (१३.२९)

उन दिनों कश्मीर का शासन हर्षदेव के हाथ में था। "समस्तपृथिवी-रसकर्षण" उसके अतिपातातिरेक एवं क्रूरता का परिचायक है। हर्षदेव का बहुपत्नीत्व एवं कामुकता प्रसिद्ध है। बिल्हण भी

खेदकारणमवान्तरापगासंगमं गतमवेत्य वारिधेः ।
सम्मदादिव महातरंगिणी चक्रवालमगमत् प्रसन्नताम् ।। (१४.२७)

द्वारा इसो ओर संकेत करते हैं।

कवि अपने पर्यटन- काल में अन्यान्य ग्रामीण परम्पराओं से अवश्य ही परिचित हुआ होगा। वह पथिकों को पानी पिलाने के लिये नियुक्त ग्रामबालाओं की ओर अत्यन्त आकृष्ट प्रतात होता है। पथिकगण पानी पीने में उतनी रुचि नहीं दिखाते जितनी उन बालाओं के बिम्बाधर पान में :

पपुः प्रपापालिकया समर्पितं चिरेण पांथाः कथमप्यनादरात् ।
तदीय बिंबाधरपानलम्पटाः सपाटला मोदमपि प्रपाजलम् ।।

काव्य के प्रति अमोघ रुझान रखते हुए भो बिल्हण यत्र तत्र सन्दर्भवश जिन सांस्कृतिक

तथा ऐतिहासिक तथ्यों की ओर निर्देश करते हैं, वे एक इतिहासकार के लिये कम महत्व के नहीं।

हम कह सकते हैं कि "विक्रमांकदेव चरित्र एक ऐतिहासिक घटना का सहारा लेकर महाकाव्य की रचना का श्लाघनीय प्रयास है।" उनकी कविता में तड़क-भड़क उतनी नहीं, जितनी बाण की कल्पना में, उतनी कृत्रिमता नहीं जितनी पद्मगुप्त में तथा उतनी ऐतिहासिकता नहीं जितनी कल्हण में। उनकी कविता मध्यममार्गिणी है, जिसमें ऐतिहासिकता एक समापत्ति मात्र है। 'सरस्वती के विभ्रम की जन्मभूमि' श्रवणामृत' की अनभ्र' वर्षा करनेवाली वैदर्भी रीति का प्रयोग विरले ही लोगों के लिये सम्भव है। इसी रीति पर गुम्फित इनकी कविता-कामिनी के प्रत्येक पद से मानों सुरभारती की वीणा झंकृत होती रहती है। ●●

लेखकों से

'धर्ममार्ग' धर्म, दर्शन, आध्यात्मिकता से संबंधित किसी भी विषय पर कहानी, लेख, कविता संस्मरण आदि आमंत्रित करता है। **काश्मीर संबंधी रचनाओं को विशेष महत्व दिया जाएगा।**

रचनाएं जितनी मौलिक, अप्रकाशित, अप्रसारित और हमारे उद्देश्यानुरूप हों उतनी अधिक प्राथमिकता उन्हें दी जाती है।

स्वीकृति की दशा में सूचना तुरन्त भेज दी जाती है। **अस्वीकृति की सूचना नहीं दी जाती।**

अस्वीकृत रचनाएं तभी लौटाई जाती हैं यदि उनके साथ डाक-टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा भेजा गया हो।

रचनाएं जितनी स्पष्ट लिखी या टाइप होंगी उन्हें प्रकाशित करने में हमें उतनी ही सुविधा होगी।

रचनाओं के अत्यधिक संख्या में प्राप्त होने के कारण प्रकाशन में विलंब होना स्वाभाविक है। कृपया इस संबंध में बार-बार पत्र व्यवहार न करें। हम अनुगृहीत होंगे।

—सम्पादक

रंग में भंग

मैंने देखा पुष्प को वह हंस पड़ा तुरन्त ।
में जो है हंस रहा वह तू ही है अन्त ॥

× × × ×

बर्रे ने मुझ को छुआ मुख से निकली हाय ।
मैंने ही निज को डंसा बरबिन के हाय ॥

× × × ×

तू नारी मैं नर कहां दोनों का सत एक ।
दो दो क्यों कहता अरे कर ले नेक विवेक ॥

× × × ×

रूप रंग सुन्दर भला पर क्यों इतना मान ।
जिसने यह सब कुछ दिया क्यों न उसी को मान ॥

× × × ×

श्रवण सुखद संगीत यह विश्व ताल संगीत ।
तो फिर क्यों तू मनुज का गाता फिरता गीत ॥

× × × ×

अंग अंग में रम रहा रंगरेज का रंग ।
बौराई तू भंग में पड़ा रंग में भंग ॥

× × × ×

हरिभाऊ उपाध्याय

कहावतें बहुमूल्य मानवीय अनुभव की देन हैं। वे सूत्रबद्ध उक्तियां मनुष्य के युगयुगीन लोकानुभव एवं ज्ञान की जीती जागती साक्षी हैं। इनके अध्ययन द्वारा किसी भी समाज के रीति-रिवाजों, धार्मिक, नैतिक तथा व्यावहारिक मान्यताओं का अध्ययन किया जा सकता है। जब से मानव ने वाणी का व्यवहार करना सीखा तभी से वह अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिये कहावतों का प्रयोग करने लगा। इनका निर्माण प्रायः दैनिक अनुभवों, प्रभावशाली घटनाओं अथवा विशेष परिस्थितियों के साक्षात्कार से होता है।

परिवार

अन्य भारतीय भाषाओं की भांति कश्मीरी में भी कहावतों का विशाल भण्डार है। इन में कश्मीरी समाज के विभिन्न पहलुओं पर अनुभवपूर्ण चर्चा मिलती है। समाज का प्रमुख एव आधारभूत केन्द्र है परिवार। यह एक ऐसा केन्द्र है जिस पर समस्त सामाजिक ढांचे की नींव अवस्थित है। हमारे धर्मशास्त्रों में परिवार के लिये जो कर्तव्य निर्दिष्ट किये गये हैं उनके अनुसार परिवार एक सामाजिक अनुष्ठान है। अतः परिवार के सभी सदस्य मिल कर काम करें। उनमें पारस्परिक सहयोग, सद्भाव तथा एकता की भावना का होना आवश्यक है। परिवार के स्वामी का कर्तव्य है कि वह अपने सदस्यों का पालन पोषण भली भांति करे, उन्हें समुचित शारीरिक तथा मानसिक विकास करने के लिये अवसर प्रदान करे तथा उनके दुःख और संकट को दूर करे। कश्मीरी कहावतों में ये सभी निर्देश सरल सजीव ढंग से व्यंजित हुए हैं। परिवार सम्बन्धी कुछ कश्मीरी कहावतें उद्धृत की जाती हैं :

१. गरअ गव च़कि नाव दकअ दी-दी पकनाव।

घर अथवा परिवार एक नाव के समान है, जिसे चलाने के लिये सम्मिलित रूप से धक्का लगाने की आवश्यकता है।

डॉ. शिबन कृष्ण रैणा

काश्मीरी कहावतों में समाज

२. लरि हुंद बार लबि प्यठ।

घर का भार दीवार अर्थात गृहस्वामी पर होता है।

३. यूत चोर अयाल, त्यूत बोड जंजाल।

अधिक सन्तति में अधिक जंजाल है।

४. शेरकतअच ल्येज छि खेमअच़ होंग्येव।

संयुक्त परिवार की हांडी कुत्ते ने चाटी है।

५. गरअ कर्यो अनि तअ कानि, गरअ रावुर मानमानि।

घर तो अन्धी और कानियों तक ने किया, किन्तु घर मनमानी से बिगड़ गया।

स्त्री-पुरुष

स्त्री-पुरुष के परस्पर सम्बन्ध पर विचार करने वाली कुछ कहावतें भी देखिये :

१. खानदार गव थानदार।

पुरुष अथवा गृहस्वामी थानेदार के समान होता है (परिवार के सदस्यों पर कड़ी नजर रखना उसका कर्तव्य है)।

२. अख जनाअ छय दौलत ब्याख जलत।

पहली पत्नी दौलत समान है और दूसरी दरिद्रता समान।

३. जनानि रोस मर्द गव जअच रोस हून।

स्त्री के बिना पुरुष लोम के बिना कुत्ता होता है।

पारिवारिक सम्बन्ध

माता-पिता, पुत्र- पुत्री, भाई- बहन तथा अन्य पारिवारिक सम्बन्धों से सम्बन्धित कुछ और कहावतें हैं :

१. मअज गयि आोल, बब गव चोल।

माता घोंसले के समान शरणदायिनी तथा पिता सिपाही के समान डांट बतलाने वाला होता है।

२. हअंठ क्या जानि पुत्रदग।

बांझ पुत्र पोड़ा क्या जाने ?

३. चेर पपनस तअ कूर बड़नस छु नअ केंह ति लगान।

खुबानी पकने तथा पुत्री के वयस्का होने में तनिक देर नहीं लगती।

४. कूर छि आसनस छिनरावान तअ न आसनस मंदछावान।

पुत्री माता पिता की सम्पत्ति को विवाह के समय लुटा देती है और इसके अभाव में उन्हें लज्जित कर देती है।

५. बोय गव कअन्य बेनि गयि थअन्य।

भाई का स्वभाव पत्थर के समान कठोर तथा बहिन का मक्खन के समान कोमल होता है।

६. बोय बअयिस पुशपनाह बो बअयिस दुश्मना।

भाई भाई का सहयोगी भी है और समय पड़ने पर शत्रु भी बन जाता है।

७. नोश गयि ग्रांदग्र कग्रन्य, कूर गयि लूकग्रहग्रंज माल ।

बहू परिवार की ग्राधारशिला है ग्रौर पुत्री ग्रौरों की धरोहर ।

८. नोश बननि नग्र कूर तग्र हश बननि मग्रज

बहू कभी पुत्री नहीं हो सकती तथा सास कभी मां नहीं हो सकती ।

९. हश गयि तग्र नोशि मुस द्राव ।

सास चली गयी तो बहू ने सुख की सांस ली ।

१०. गरस मंज सोन बेहतर, मजलिसि मंज नग्र जाम ।

ननद से घर में सौत भलो ।

११. गरग्र प्यठ जामतुर गव बरग्र प्यठ हून ।

घर जमाई दरवाजे पर पड़े कुत्ते के समान होता है ।

ग्रतिथि सत्कार

सामाजिक सम्बन्धों में ग्रतिथि सत्कार का विशेष महत्व है। ग्रतिथि सेवा की महिमा पर हमारे धर्मग्रंथों में विशद रूप से वर्णन मिलता है। मनुस्मृति में लिखा है कि ग्रतिथिसेवा से धन, ग्रायु ग्रौर स्वर्ण की प्राप्ति होती है। वर्तमान समय में ग्रतिथि सत्कार के उक्त ग्रादर्श को निभाना कठिन हो गया है। इसके कारण हैं ग्राधुनिक युग की ग्रार्थिक जटिलता तथा ग्रन्य सामाजिक विक्षेप। कुछ कश्मीरी कहावतें हैं :

१. पछिस पोछ खरान तग्र खानदारिनि दोशव ।

ग्रतिथि को दूसरा ग्रतिथि ग्रखरता है किन्तु गृहिणी को दोनों ।

२. युस यसुन्द गरग्र चाव सु तसंदि द्य डंबि द्राव ।

गृहिणी को पुत्र ग्रौर ग्रतिथि बराबर हैं ।

सामाजिक संगठन में मित्रता का विशेष हाथ है। प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो का कहना है कि दो व्यक्तियों के मित्र रूपी सम्बन्ध इस सृष्टि की एक उच्चतम देन हैं। मित्रता के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाली कुछ कहावतें हैं :

१. नादान दोस्तग्र खोत छु दाना दुश्मन जान ।

नादान दोस्त से दाना दुश्मन ग्रच्छा ।

२. यार ग्रय ग्रासि ति सर दीवि तस ।

सच्चे मित्र के लिये सिर भी कटवाना पड़े तो कम है ।

३. मित्रस गछि ग्राब बुथिस प्यठ वनुन ।

मित्र को उसके दोष उसके मुंह पर कहने चाहिये । ●●

बन्दा वैरागी

प्र. त्रि. दीपंकर

श्रीमद्भगवद्गीता के निष्काम कर्मयोगी के जैसा उज्ज्वल आदर्श था—प्रत्यक्ष बन्दा वैरागी। इस दुनिया में एक से एक बढ़ कर हस्तियां आईं और अपने-अपने करतब दिखा कर गुजर गईं। पर बन्दा का वह वैराग्यपूर्ण जीवन, देश-धर्म की रक्षा हित निज प्राणोत्सर्ग की घटना आज भी भारत-जन के हर मानस में सुरक्षित है।

"अनाथ अबलाओं की इज्जत खतरे में है, वे तुम से रक्षा की आशा करती हैं। गौ माता आज कसाइयों की छुरी के साये में खड़ी तुम्हारी ओर निहार रही है। देश-मन्दिर ध्वस्त किए जा रहे हैं। भारत-मां की लाज लुट जायेगी क्या? धर्म तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। तुम अपनी सेवाएं अर्पित करो।" जब गुरु गोविन्द सिंह तीर्थ यात्रा करते हुए दक्षिण पहुंचे तो राजा लक्ष्मण राव तपस्वी के वेष में तपस्यारत थे। उन्हें यह कभी स्वीकार नहीं था कि अमित उत्साही, सुयोग्य शासक, प्रख्यात शूरवीर एवं अचूक लक्ष्य-वेधी धनुर्धर इस प्रकार धर्म पर आई आपत्ति को अनसुना कर विरक्त संन्यासी बन जाए, अतः उन्होंने उक्त प्रस्ताव को राजा लक्ष्मण राव (बन्दा वैरागी) के सम्मुख रखा।

"आपकी आज्ञा, देश की आज्ञा, सिर माथे, मैं तो आपका और देश का बन्दा हूं।" और बस, उसी दिन से राजा लक्ष्मणराव 'बन्दा' के रूप में परिवर्तित हो गए। गुरु गोविन्द सिंह के उन ओजस्वी शब्दों का ही यह चमत्कार था कि एक वैरागी वैराग्य तज कर कूद पड़ा देश-काल के संकटों को मिटाने के लिए धर्म-युद्ध में। उसी दिन से बन्दा, संस्कृति-धर्म व देश का सच्चा रक्षक और अनुरागी बन गया।

दक्षिण से बन्दा वैरागी पञ्जाब आया। अब तक गुरु गोविन्द सिंह अस्वस्थ हो चले थे—अतः उनका शरीर अधिक दिनों न चल सका। गुरु गोबिन्द सिंह के दो दुध-मुहें बच्चों को जीवित ही दीवार में चुनवा दिया जाना—बन्दा के लिए हृदय को अत्यन्त क्षुब्ध कर देने वाली घटना थी। उसने सिख वीरों का आह्वान किया और चढ़ दौड़ा—

लाहौर पर आक्रमण करने।

बन्दा के धनुष से निकला बाण कभी भी व्यर्थ नहीं गया। वह रण-क्षेत्र में सहसा ही प्रकट होता और शत्रु के मुख्य-मुख्य नायकों को चुन-चुन कर मारता। उसे युद्धरत देख कर ऐसा लगता मानो प्रत्यक्ष इन्द्र ही समरांगण में युद्ध कर रहे हों। वह जिस प्रकार अचानक प्रकट होता वैसे ही सहसा अदृष्य हो जाता था।

वह प्रायः युद्ध-भूमि के समीप पहाड़ी पर ध्यानस्थ बैठा रहता और जब उसे ऐसा लगता कि सिख सेना को उसकी आवश्यकता है, वह अपने अश्व पर बैठ कर तूफान की तरह युद्ध-भूमि में जा उपस्थित होता और जब उसे लगता कि अब उसकी आवश्यकता नहीं है, वह पुनः लौट पड़ता और पर्वत पर जा कर पुनः ध्यानस्थ हो जाता मानो कुछ घटा ही न हो। उसके बारे में यह प्रसिद्ध हो गया था कि बन्दा तो दो ही स्थानों पर मिलेगा, समर-भूमि में या पहाड़ी पर, ध्यानस्थ मुद्रा में।

मुसलमान इतिहासकारों ने भी यह स्वीकारा है कि बन्दा लोकोत्तर शूर था। बन्दा सदैव वैरागी ही रहा। वह कहा करता था—"मैं वैरागी हूं और गुरु का बन्दा, मुझे धन और राज्य को क्या करना ?" सचमुच ही वह महान वैरागी था। विजय में मिले धन का अंश भी उसने कभी नहीं छुआ। निस्वार्थ भाव से वह सतत युद्ध में रत रहा। उसकी निजी आवश्यकताओं का ध्यान भी सिख सरदारों को ही रखना पड़ता था।

दिल्ली में सम्राट बहादुर शाह प्रथम ने सेना ले कर बन्दा का मुकाबला किया व बड़ी कठिनतापूर्वक छल से बन्दा को बन्दी भी बना लिया। लौह जंजीरों में जकड़ा बन्दा हाथी पर बांध दिया गया। इस प्रकार जब वह दिल्ली ले जाया जा रहा था तब उस महायोगी ने स्वयं को सम्भाला, प्राणों को स्थिर किया और देखते ही देखते वे सुदृढ़ लौह श्रृंखलायें तड़तड़ा कर टूट गईं जिन में वह जकड़ा था। कोई सावधान हो इस से पूर्व ही निकट का एक यवन सैनिक भूमि पर फेंक दिया गया धूल चाटने के लिए। उसकी तलवार ले कर घोड़े पर जा बैठा बन्दा। अब भला इतना साहस किस में था जो अश्व-पीठ पर जा बैठे बन्दा का, बलशाली बन्दा का, मुकाबला कर सके। कौन सामना करता ? देखते-देखते वीर बन्दा ने अपने सभी बन्दी साथियों को छुड़ा लिया और उड़न-छू हो गया।

बन्दा के नेतृत्व में सिख सेना ने अनेकों बार यवन दुर्गपतियों को परास्त किया। अनेकों बार सम्पत्ति उनके हाथ लगी। ऐसे समय पर कई बार सिख-सेनानायकों ने विचार किया और पाया कि यदि वीर बन्दा का नेतृत्व उन्हें सदैव स्थायी तौर पर मिलता रहे, तो शीघ्र ही अजेय सिख साम्राज्य स्थापित हो सकता है। अतः उन्होंने बन्दा से कई बार अनुरोध किया कि विजय में मिले धन को आपस में वितरित न करके बन्दा स्वयं स्वीकारे और विजित दुर्गों पर अधिकार करके उनका अधिपति बने। तब बन्दा का दो-टूक उत्तर होता :

"मैं वैरागी हूं और गुरु का बन्दा, भला मुझे धन और राज्य को क्या करना ?" सत्य ही वह महान वैरागी था। यह शक्ति उस समय बन्दा में ही थी कि वह जब चाहता सिख सरदारों को संगठित कर लेता था।

बहादुर शाह के बाद दिल्ली की गद्दी पर फरुखसियर बैठा। उस ने काश्मीर के सूबेदार अब्दुल समद खां को बन्दा का मुकाबला करने ससैन्य भेजा।

दुष्ट समद खां ने कूटनीति से काम लेना उचित समझा। उसने एक चाल चली। समद खां ने अपने सन्देश-वाहक को बुलाया और कहा—"सिख सरदारों के पास जाओ और मेरा यह सन्देश उन्हें दो कि मेरी सिखों से कोई दुश्मनी नहीं है। सम्राट सिखों को राज्य देने को प्रस्तुत हैं, और फिर बन्दा तो सिख नहीं है। उस ने सिखों को बेवजह भड़का कर सम्राट का द्रोही बना दिया है। इस से तो सिखों का विनाश हो जायेगा, हम तो सिर्फ बन्दा को पकड़ने आये हैं।"

उक्त सन्देश सिख सरदारों के पास पहुंचा। अब तक सिख सेना दुर्दमनीय हो गई थी। अतः सिख-सरदारों में शंकायें उठने लगीं। समद खां की नीति सफल हुई। बन्दा ने जब देखा कि सिखों में बुद्धि-भेद उत्पन्न हो गया है और वे युद्ध में भी उत्साहपूर्वक नहीं लड़ते, तो उस ने विवश हो कर दुर्ग का आश्रय लिया। इधर समद खां अपनी कूट-नीति से भरे सन्देश सिख-सरदारों तक पहुँचाता रहा, और एक दिन वह आया जब कुछ भोले सिख-सरदारों ने बन्दा से प्रश्न किया कि वह सिख है या नहीं? बस यहीं पर बन्दा की हार हो गई। उसका मात्र एक ही उत्तर था—"मैं गुरु का बन्दा हूँ, इस से कम न अधिक।"

तब तक सिख, समद खां के बहकावे में आ चुके थे। उन्होंने बन्दा से कहा कि वह विधिपूर्वक सिख धर्म स्वीकार कर ले।

बन्दा का अन्तर रो पड़ा। अपने नासमझ सिख भाइयों की इस नादानी को भी क्षमा करते हुए, उस ने कहा—"धर्म स्वीकार किया नहीं जाता अपितु वह हृदय से स्वीकार होता है। मेरा वर्तमान धर्म किसी प्रकार भी बुरा नहीं और न ही मैं इस धर्म को दुनिया के कहने पर बदलने को ही तैयार हूं।"

शंका की लपटें तो सिखों को पहले ही अपनी लपेट में ले चुकी थीं। वे बन्दा से रुष्ट हो चले। समद खां ने सिखों को आश्वासन दिया था कि बन्दा को छोड़ कर अन्य सब को दुर्ग से निकल जाने दिया जायेगा। अतः बहुत से सिख सरदार अपने दल-बल सहित इस आश्वासन पर कि समद खां कुछ भी न कहेगा और उन्हें सकुशल निकल जाने देगा दुर्ग को और साथ ही बन्दा को भी छोड़ कर चले गए। पर दुर्ग से बाहर निकलते ही धूर्त समद खां ने उन्हें चुपचाप कैद करवा लिया और फिर बड़ी निर्दयता से उनका अन्त कर दिया। बन्दा के साथ विश्वास-घात करके सिखों ने अपने को तो धोखा दिया ही, धर्म के नाम पर उन्होंने बन्दा पर जो कीचड़ उछाला उसका सोलह आने दण्ड उन्हें मिल गया।

बन्दा के पास अब बहुत ही थोड़े से सिख सैनिक बच रहे थे। ये सिख वे लोग थे जिन्होंने बन्दा जैसे महापुरुषों को पहचानने में भूल नहीं की थी। अतः इन बचे हुए सिखों ने ईमानदारीपूर्वक बन्दा का अन्त तक साथ दिया। जब तक जीवित रहे, बन्दा का आदर करते रहे। दुर्ग की खाद्य-सामग्री अब तक समाप्त हो चली थी। अपने ही साथियों में से एक सिख सैनिक ने एक दिन शत्रु के बहकावे में आ कर दुर्ग का द्वार खोल दिया और ७८४ साथियों सहित बन्दा पकड़ लिया गया। इस बार बन्दा को हाथी पर नहीं, अपितु सिंह के पिंजरे में बन्द करके फिर हाथी पर लाद कर दिल्ली लाया गया।

सम्राट ने वीर बन्दा को शेर के पिंजरे में बन्द देखा तो प्रसन्न हुआ। बोला :

"तुम हमारा धर्म स्वीकार कर लो, तुम्हारी जान बख्श दी जायेगी।" पर वाह रे वीरो! एक भी

बन्दी सिख सरदार ने सम्राट के उक्त प्रलोभन को स्वीकार नहीं किया अपितु घृणा से थूक कर अपना असन्तोष प्रकट किया । यह देख कर भी सम्राट ने बन्दा से कहा :

"तुम हमारा मजहब न भी स्वीकार करो फिर भी कोई फर्क नहीं पड़ता । हां, तब तुम्हें हमारे सेनापति का पद सम्भालना पड़ेगा—तभी तुम्हारे जुर्म को माफ किया जा सकता है ।" पर, भला वह मस्त वैरागी, धर्म जाति के शत्रुओं के अत्याचारों में सहयोगी बनता ? छि: ! और फिर एक वैरागी को सेनापति के पद का क्या लोभ ? बन्दा एक व्यंग्यात्मक हंसी हंसा । सुल्तान तिलमिला उठा । और कालदेव भी एक बार सिहर उठे उसकी आज्ञा सुन कर ।

प्रतिदिन १०० वैरागी सिख-शूरों के सिर काट लिए जाते । यही क्रम सात दिनों तक चला । शायद "धर्म के लिए सिर दे रहे हैं ... " यह उन मनस्वियों को गौरवमय लगा होगा । विधर्मी शत्रु के सभी प्रलोभन उनके सम्मुख तुच्छ सिद्ध हुए ।

फिर आया सन १७१५ का वह दिन, साथ में मनहूसियत व भारत-मां के लिए एक दुखद संवाद ले कर । आठवें दिन बन्दा को नगर से बाहर लाया गया । शरीर यातनायें सहते-सहते टूट चुका था वह । पर नेत्रों में अब भी वही दीप्त आभा व्याप्त थी । सम्राट ने पहले ही से योजनायें बना ली थीं । यह योजनायें इतनी पैशाचिक प्रवृत्तियों की थीं कि स्वयं सुल्तान उन योजनाओं को क्रियात्मक रूप में देखने का साहस न संजो सका ।

एक परीक्षा ऐसी आई बन्दा के सम्मुख कि बड़े से बड़ा सहनशील भी हिल उठता । पर उस वैरागी ने हंसते-हंसते उसे भी स्वीकारा—मात्र धर्म देश के लिए । बन्दा के सम्मुख ही उसके इकलौते बेटे की छाती फाड़ कर जल्लादों ने निर्दोष बालक का कलेजा निकाल लिया । कुछ देर पहले वह धड़कता हुआ मासूम कलेजा अब शान्त था । भोले बालक का कलेजा बलपूर्वक उन आततायियों द्वारा बन्दा के मुख में ठोंस दिया गया धरा हिल उठी । यमराज भी सिसक उठे होंगे, शायद पृथ्वी पर हो रहे इन कृत्यों को देख कर । ईश्वर उन्हें कभी भी क्षमा नहीं करेगा । पर वैरागी बन्दा तो तब तक नेत्र बन्द किए, ध्यानमग्न, ईश्वर में ही अपने को अन्तर्हित हो जाने की बात सोचता रहा । मानो कुछ हुआ ही न हो ।

आग में तपाई हुई लौह-शलाकाओं से वीर बन्दा वैरागी को तब तक पीटा गया जब तक उसका पूरा शरीर झुलस नहीं गया । उपरांत गर्म-गर्म चिमटों से बन्दा का मांस नोचा गया । पर बन्दा अब भी आंखें बन्द किए उसी प्रकार मुस्करा रहा था । सम्राट निजामुद्दौला ने आश्चर्य मिश्रित स्वर में पूछा—"इतना परेशान किए जाने पर भी तुम प्रसन्न कैसे हो ?"

वैरागी का उत्तर था—"जो आत्मा के स्वरूप को पहचानता है वही इस बात को जानता है कि आत्मा अमर तथा दु:खातीत है ।"

उत्तर सुन कर शत्रु चकित रह गया । वीर वैरागी बन्दा के मुख पर शुभ आभा तिर रही थी । वेदना का एक चिन्ह तक न था उसके चेहरे पर । और फिर वेदना चर्मोत्कर्ष पार कर गई । साथ ही बन्दा की स्वच्छन्द आत्मा भी सांसारिक पीड़ाओं और बन्धनों का उल्लंघन कर उड़ चली किसी अज्ञात दिशा की ओर । बस रह गया बन्दा का निष्प्राण

(शेष पृष्ठ २३ पर)

"वाग्देवतावतार" आचार्य "मम्मट" का स्थान काव्याचार्यों में सर्वश्रेष्ठ है। आपकी अनुपम कृति काव्यप्रकाश संस्कृत साहित्य की अमूल्यतम थाती है जिस से परवर्ती साहित्याचार्यों को भी 'काव्य-शास्त्र' का संबल मिलता रहा है। यही नहीं वरन काव्यशास्त्र रूपी सागर में 'मम्मटाचार्य' का काव्यप्रकाश एक पार उतारने वाला बेड़ा है, अज्ञानियों के लिए ज्ञानालोक का आधारस्तम्भ है। यही कारण है कि ११वीं शताब्दी के बाद से जितनी टीकाएं, अध्ययनाध्यापन और रहस्यानुसन्धान इस पर हुआ है शायद ही उतना किसी दूसरे ग्रन्थ पर हुआ

आचार्य मम्मट और उनका काव्यप्रकाश

●

शोभनाथ पाठक

●

हो। इस काव्यप्रकाश की गरिमा का गान करते हुए महामहोपाध्याय श्री काणे ने कहा है:

"Except the Bhagvadgita there is hardly any other work in classical Sanskrit that has so many commentaries on it."

(*History of Sanskrit Poetics*—263)

श्रीमद्भगवद्गीता के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में केवल काव्यप्रकाश ही ऐसा ग्रन्थ है जिस पर टीका टिप्पणियां निरन्तर लिखी जाती रही हैं।

ऐसा महान विभूति का जन्मस्थान काश्मीर है। इन्हीं गरिमाओं के कारण काश्मीर को शारदा देश कहा गया है। यहां उद्‌भूत प्रतिमाएं विश्व में अपने ढग की बेजोड़ रही हैं। उन्हीं प्रतिभाओं, सरस्वती पुत्रों मे एक काव्याचार्य मम्मट भी हैं। भीमसेन दीक्षित के अनुसार इनके पिता का नाम जेयट था तथा केयट इनके छोटे भाई थे। पर यह निर्णय भी विवादास्पद है। हां, मम्मट का काश्मीरी होना और काश्मीर के दार्शनिक साहित्यिक वातावरण में पलना निर्विवाद है। ११वीं शताब्दी का काश्मीर ही इनका आविर्भाव काल है। ११वीं, १२वीं शताब्दी के काश्मीर की दार्शनिक साहित्यिक प्रगति में इनका काव्य प्रकाश आधारस्तम्भ है। काव्यप्रकाश के इस महत्व का एक ही प्रमाण पर्याप्त है और वह है काव्यप्रकाश की रचना के एक शताब्दी के भीतर ही भारत के कोने कोने में व्याप्त हो जाना।

शारदा देश (कश्मीर) यथा नाम तथा गुण की गरिमा से मण्डित है। वहां के कवि और आलोचक मानव की सर्वविध अनुभूतियों को काव्य में प्रतिफलित माना करते हैं। संसार की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो काव्य के आनन्द का अभिव्यंजन-साधन न बन जाय तभी तो सरस्वतीकण्ठाभरण के व्याख्याकार रत्नेश्वर का कथन है: "नास्त्येव तत्काव्यं यत्र परम्परयाऽपि, विभावादिपर्यवसानं न भवतीति काश्मीरिका।"

काव्यप्रकाश का आरम्भमंगल मम्मट के काश्मीरिक शैवदर्शन के पूर्ण परिचय का प्रतीक है। काश्मीरिक शैवदर्शन की पृष्ठभूमि पर रसदर्शन की स्थापना का मम्मट ने जैसा वर्णन किया है उससे तो

मम्मट और काश्मीरिक प्रत्यभिज्ञा दर्शन का साम्य स्पष्ट होता है। काव्य प्रकाश के अतिरिक्त एक दूसरी उनकी अनुपम कृति है : शब्दव्यापार विचार। इन ग्रन्थों में मम्मट की काव्यभावना और ध्वनि तत्व की समीक्षा का अनुप्राणन प्रारम्भ से अन्त तक स्पष्ट प्रतीत होता है। स्मरण रहे कि मम्मट से बढ़ कर ध्वनिवाद का प्रचारक कोई नहीं हुआ।

मम्मट का काव्य स्वरूप निरूपण अलंकार शास्त्र की काव्य विषयक प्राचीन और नवीन धारणाओं तथा भावनाओं का समंजस समन्वय है। इनके पूर्ववर्ती अलंकारिकों की कृतियां काव्य का सम्पूर्ण निर्वचन नहीं करतीं। मम्मट को भामह और दण्डी, वामन और रुद्रट, आनन्दवर्धन एवं अभिनवगुप्त, राजशेखर और भोज कुन्तक तथा क्षेमेन्द्र की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, किन्तु मम्मट की जो श्रेणी है उसमें भी इन महान काव्याचार्यों में से किसी को नहीं रखा जा सकता।

काव्यप्रकाश में काव्यालोचना की विविध पद्धतियों का जो समन्वय है, वह भी काव्यप्रकाश के किसी पूर्ववर्ती काव्यालंकार ग्रन्थ में नहीं दिखाई देता। अलंकारवादी और रीतिवादी आचार्यों ने पारिभाषिक समीक्षण शैली का अनुसरण किया है, जिसमें सहृदय की अनुभूति के काव्यस्वरूप का कोई विवेचन नहीं अपितु शब्दार्थ वैशिष्ट्य के रूप में ही काव्य का बहुविध विश्लेषण किया गया है। ध्वनि-वादी आचार्यों की काव्यालोचना शैली का रहस्य काव्यात्मक समीक्षण का रहस्य है, जिसमें सहृदय हृदय का आह्लादाभिव्यंजक काव्य कवि हृदय के आह्लाद का अभिव्यंजन स्वरूप सिद्ध होता है। वक्रोक्तिवादी आचार्य रचनासमीक्षण शैली के आलोचक हैं। इसलिये इस आलोचन में 'काव्य' रचना सौंदर्य में ही पहचाना जा सकता है और इसका जो भी अनुभवसौन्दर्य है, उसका नियामक रचनासौन्दर्य ही माना गया है। इन विविध समीक्षण शैलियों का समन्वय सर्वप्रथम जिस आचार्य ने किया वे हैं : "मम्मटाचार्य"।

'काव्य-प्रकाश' दस उल्लासों में विभक्त है जिसमें प्रथम उल्लास है : काव्य स्वरूप निरूपण, दूसरा है : शब्दार्थ- स्वरूप निरूपण तीसरा है : आर्थी व्यञ्जना निरूपण, चतुर्थ : उत्तम काव्य निरूपण, पंचम : मध्यमकाव्य निरूपण, षष्ठ : अवरकाव्य निरूपण, सप्तम : दोष निरूपण, अष्टम : गुण निरूपण, नवम : शब्दालंकार निरूपण और दशम उल्लास है : अर्थालंकार निरूपण। काव्यशास्त्र की कोई भी ऐसी विधा नहीं है, जो काव्यप्रकाश से अछूती हो। काव्यप्रकाश नाम ही इस बात का द्योतक है कि जिसे काव्य कहते हैं, वह न तो अलंकार में, न रीति में, न वक्रोक्ति में और न ही केवल ध्वनिप्रत्यभिज्ञान में है। 'काव्य' तो शब्दार्थयुगल में है, जिसकी योजना लोकोत्तर-वर्णनानिपुण कवि का काम है और जिसकी तदनुरूप भावना है सहृदय का काम। लोकोत्तरवर्णन की प्रक्रिया का सूक्ष्म विश्लेषण, जिसे कह सकते हैं व्यंजना का विश्लेषण। काव्य किसी वादविशेष में नहीं समा सकता वरन वह तो है सभी वादों का मूलस्रोत। इस प्रकार समस्त काव्यवादों का समन्वय ही काव्य का स्वरूपपरिच्छेद कर सकता है—इस महान दार्शनिक धारणा से मम्मट ने जो कार्य किया है वह एक मौलिक कार्य है।

मम्मट ने काव्य में, उत्तम, मध्यम और अवर रूप काव्यत्रितय में शब्दार्थ की अदोषता को आवश्यक माना है। शब्दार्थयुगल की इस अदोषता की मान्यता में दोष के क्रमशः विकसित हुए स्वरूपप्रत्यभिज्ञान का भी अभिप्राय समाविष्ट है। मम्मट ने अपने दोष

निरूपण में 'अर्थचित्र' काव्य के दोषों का जो निरीक्षण और विवेचन किया है वह अलङ्कार शास्त्र को मम्मट की एक देन है। वह अलङ्कारिक बताते ही आ रहे थे किन्तु अन्य अलंकार बन्धों के दोषों का निरूपण सर्वप्रथम मम्मट ने ही किया। इसी कारण से मम्मट को अलंकार शास्त्र के आचार्यों में सबसे बड़ा दोषदर्शी आचार्य माना गया है।

मम्मट के काव्यलक्षण और रसलक्षण कला और अनुभूति के दृष्टिकोणों से सर्वथा समञ्जस बने हैं। यह सामञ्जस्य ध्वनि दर्शन के गम्भीर मनन और चिंतन का तो परिणाम है ही किन्तु साथ ही साथ इस में मम्मट की अपनी काव्यभावना शक्ति का भी हाथ है। ध्वनिवाद की दृष्टि से देखते हुए ही आचार्य मम्मट ने काव्य का यह स्वरूप देखा है :

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि" :

जिसमें शब्दार्थ की सगुणता काव्यस्वरूप का परिच्छेद करती है।

अलंकार शास्त्र के इतिहास में 'काव्यप्रकाश' और उसके रचयिता काश्मीरिक 'मम्मट' का नाम अमर है। वैसे तो सभी काव्यवाद : जैसे, रसवाद, अलंकारवाद, रीतिवाद, ध्वनिवाद, वक्रोक्तिवाद आदि काव्यप्रकाश के पहले ही प्रचलित हो चुके थे, मम्मट ने किसी नये काव्यवाद का अनुसन्धान नहीं किया। फिर भी मम्मट का 'काव्यप्रकाश' अलंकारशास्त्र में स्वयं एक वाद रूप में प्रचलित हुआ जो परवर्ती अलंकारिकों के लिये मनन- चिन्तन का विषय बन गया। इस विषय में काव्य-प्रकाश के टीकाकार कमलाकर का यह कथन कितना उपयुक्त है :

काव्यप्रकाशे टिप्पणयः सहस्रं सन्ति यद्यपि।
ताभ्यस्त्वस्या विशेषो य पण्डितैस्सोऽवधार्यताम्।

श्री रणवीर संस्कृत अनुसन्धान विभाग
धर्मार्थ ट्रस्ट के उपयोगी प्रकाशन

१. श्री रणवीर चिकित्साप्रकाश : भाग १.	४.००
२. श्री रणवीर चिकित्साप्रकाश : भाग २.	४.००

(आयुर्वेद चिकित्सा पर अमूल्य ग्रंथ)

३. श्री वैष्णवी पीठ	१.५०

(श्री वैष्णोदेवी का इतिहास, पूजनविधि तथा माहात्म्य)

४. वैष्णो कथा (पद्य में) हिन्दी	०.६०
५. वैष्णो कथा उर्दू	०.६०
६. तौषी शतकम	२.००

(तवी नदी की स्तुति में १०० श्लोक, अंग्रेजी तथा हिन्दी अनुवाद सहित)

डाक व्यय अलग

प्राप्ति स्थान

१. श्री रणवीर संस्कृत अनुसंधान विभाग, रघुनाथ मन्दिर, जम्मू।
२. धार्मिक पुस्तक भण्डार, रघुनाथ मन्दिर, जम्मू।
३. धर्मार्थ ट्रस्ट कार्यालय, जम्मू।

काश्मीर के आश्चर्य !

शिव रैना

प्राचीन काल से ही काश्मीर अपनी नैसर्गिक छटा और अनोखी संस्कृति के लिए विश्व-भर में प्रसिद्ध है। काश्मीर घाटो को यदि हम सौन्दर्य और मनमोहक दृश्या का ही प्रदेश कहें, तो अतिशयोक्ति न होगी। यह निश्चय ही संसार में सब से बड़ी और आकर्षक घाटी है। आइए इस 'भारतीय स्विटज़रलैंड' के आश्चर्यों से आपका परिचय करवायें :

अमरनाथ : भारत के इस तीर्थ की गुफा १२७२९ फाट की ऊंचाई पर है। भीतर दाहिने कोने की दीवार में एक बड़ा गोल-सा कोना है। इसी स्थान पर नीचे से शिवलिंग निर्मित होता है। उसके सामने एक ओर को पार्वती तथा गणेश की हिम-मूर्तियां स्वयमेव बनती हैं। आषाढ़ का चन्द्रमा जैसे-जैसे पूर्ण होता है, शिवलिंग बढ़ता जाता है और श्रावणी पूर्णिमा को पूरा हो जाता है। चन्द्रमा की ज्योति ज्यों-ज्यों क्षीण होती जाती है, शिवलिंग भी घटता जाता है। अमरनाथ की वार्षिक यात्रा श्रावण मास (अगस्त) में होती है।

वयन : यह निर्मल चश्मा श्रीनगर से ३३ किलोमीटर दूर है। इसके जल से हर प्रकार की खारिश मिट जाती है।

हरमुख : यह ऊंची पहाड़ी लॉर ग्राम में है। इसे भगवान शिव का निवास-स्थान माना जाता है। इस पहाड़ी के आस-पास का कोई सांप किसो को नहीं डंसता।

"काह-काह" पत्थर : एक मन का यह आश्चर्यजनक पत्थर बीजबिहाड़ा के निकट पडा हुआ है। यह पत्थर तभी ऊपर उठाया जा सकता है, जब ग्यारह व्यक्तियों की तर्जनी से इसे उठाते हुए 'काह-काह' का उच्चारण किया जाए।

बरेंग : अनन्तनाग से १५ किलोमीटर दूर स्थित इस अनोखे चश्मे की अनेक मछलियां एक आंख से अन्धी हैं।

तत्तादन : यह नादमय झरना दुबजन (शोपैयां) में है। इसका जल अत्यधिक गर्म है।

हलमपुरा : उत्तर माछीपुरा में एक दूसरे के निकटवर्ती पांच लुभावने झरने हैं। पत्थर का एक लिंग इन चश्मों में से एक में रहता है। वह लिंग स्वयंमेव एक कोने से दूसरे कोने तक एक मास के भीतर पहुंच जाता है।

तशुरनाग : यह झरना तर्बाल पर्वत पर है। चश्मे का जल पूरी शक्ति से बाहर निकलता है, जिस से कुम्हार के चाक—जैसे नयनाभिराम वृत्त पैदा होते हैं।

स्वयभू : यहां की शीतल भूमि ३० वर्षों में एक बार (कुछ समय के लिए) अत्यन्त उष्ण हो जाती है।

पेइच : यहां केवल दस विशाल पत्थरों से बने मन्दिर का कण-कण रहस्यमय लगता है। मन्दिर की अवस्था, निर्माता तथा स्थापित मूर्तियों का किसी को पता नहीं है।

हज़रतबल : श्रीनगर से छः किलोमीटर दूर, मुसलमानों की इस पवित्र मस्जिद में हज़रत मुहम्मद का एक पवित्र बाल सुरक्षित है।

परीमहल : यह ध्वंस महल चश्माशाही के निकट एक सूनी पहाड़ी पर स्थित है। मुगल शहज़ादे दाराशिकोह ने इसे अपने आदरणीय गुरु मुल्लाशाह के लिए बनवाया था। इसका नाम दाराशिकोह ने अपनी प्रिय पत्नी परी बेगम के नाम पर रखा था। मुगलकाल में यह रहस्यमय प्रासाद खगोल-विद्याध्ययन के लिए प्रयोग होता रहा।

क्षीरभवानी : यह पवित्र चश्मा श्रीनगर के निकट तुलामुला ग्राम में है। इस चश्मे का जल जब-तब रंग बदलता रहता है—कभी जामुनी, कभी हरा और कभी कोई और।

टकर : यह चश्मा उत्तर माछीपुरा ग्राम में है। यह चश्मा भी अक्सर रंग बदलता रहता है।

सप्तऋषि : वैरीनाग के निकट, एक-दूसरे के पास-पास, सात स्वच्छ चश्मे हैं। शीतकाल के छः मास ये खुश्क रहते हैं। ग्रीष्म ऋतु के छः महीनों में इनके स्वास्थ्यप्रद जल की बहार देखते ही बनती है।

पवन सन्ध्या : वैरीनाग से सात किलोमीटर की दूरी पर स्थित इस चश्मे का जल लगातार रुकता-बहता है; और ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई स्वस्थ मनुष्य सांस ले रहा हो।

वासुक नाग : वैरीनाग से १८ किलोमीटर दूर यह चश्मा बहुत बड़ा है। यह भी शीतकालीन छः महीनों में सूखा रहता है और ग्रीष्मकालीन छः महीनों में खूब खुल कर खेलता है।

त्रिसन्ध्या : दिवाल गांव का यह 'मूडी' चश्मा वर्ष भर खुश्क रह कर, केवल अप्रैल से जुलाई तक में जल पूर्ण होता है।

(पृष्ठ १८ का शेष)

शरीर। और फिर कहीं से यह शब्द गूंज उठे : "आत्मा अमर है... ...।"

बन्दा शारीरिक संसर्ग से अनन्त ब्रह्म में लीन हो चुका था। धर्म की रक्षा में उस ने सब कुछ तो वार दिया था—पुत्र, साम्राज्य, साथी सभी कुछ। पर अरे ! दुष्ट सम्राट को बन्दा का वह निष्प्राण पड़ा शरीर भी मानो काटे खा रहा था। किसी के कहे गये यह शब्द आज अक्षरशः सत्य सिद्ध हुए कि "पाप सिर पर चढ़ कर बोलता है।"

सम्राट ने बन्दा के मृतक शरीर को, जो थोड़ी ही देर पहले शत्रुओं की दमनकारी प्रवृत्तियों के नीचे पूर्णरूपेण कुचला जा चुका था, अब हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया। पर, बन्दा तो कालजयी बन, अमर हो चुका था।

आज बन्दा नहीं है। पर उसकी स्मृतियां समस्त भारत-जाति की अमूल्य धरोहर हैं। आज भी उस महान आत्मा की वह दिव्य वाणी याद आ जाती है :

"आत्मा अमर है!"

काश्मीर

मानव की वह स्वर्ग कल्पना, भू पर आ साकार हो गई।
विधि रचना-कौशल की महिमा, सुन्दरता का सार हो गई ।।
शिव की ज्ञान-विभा नग के शिखरों में ज्योति-पुंज बन छाई।
वीणापाणि भारती की भी प्रतिभा सुमनों में मुसकाई ।।
क्षीरसिन्धुवासी के यश की विमल धवल शुचि सौम्य पताका।
मानवता के इस प्रांगण में फहरी सोम-सहित ज्यों राका ।।
भारत मां का शीष-मुकुट यह गुण-गौरव-गरिमा से मण्डित।
जिसकी सरस प्रभा ने कितने उपजाये कवि-कोविद पण्डित ।।
केसर की क्यारियां अंक ले सविता-किरणों को मुसकातीं।
खुली प्रकृति की फुलवारी में विहगावली प्रभाती गातीं ।।
निर्झरिणी कल-कल ध्वनि करतीं नृत्यनिरत हो नित्य रिझातीं।
रंग-रंग के सुमन सुसज्जित शैल श्रृंखलायें हरषातीं ।।
डल की छाती पर नित बजरों की दौड़ नीर का हृदय हिलाती।
देतीं ताल ऊर्मियां, नर-नारी की विहंस मण्डली गाती ।।

डॉ० इन्द्र पाल सिंह 'इन्द्र'

शालीमार, निशात मुगल-वैभव की स्मृति में खोए से।
झांक रहे निज छवि दर्पण में अथवा हों जल में सोए से ।।
वे चिनार के विटप गगन के माप-दण्ड से शीश उठाए।
गिरि-शिखरों से होड़ कर रहे पुष्ट, प्रलम्ब भुजा फैलाए ।।
झेलम के तट पर घण्टों की ध्वनि, भक्तों की तरल पुकारें।
माझी की तानों से मिलकर समां बांधती सांझ सकारे।।
जल में गृह, गृह में जल, जीवन धारा सा, जीवन सी धारा।
लहरों का लहरों संग नर्तन-मिलन निरत है मुग्ध किनारा ।।
नित्य सुरमई सन्ध्या सिन्दूरी आभा नभ में छिटकाती।
निशा-सुन्दरी तारों जड़ी शाटिका पहिन विहंसती आती ।।
धवल ज्योत्स्ना विमल विभामय फलाती निज मोहक माया।
नगपति का उन्मुक्त हास ही दिशा-दिशा में हो ज्यों छाया ।।
सर्पीले पथ ऊंचे-नीचे गिरि-गह्वर उन्नत शैलों में।
सरिता के कूलों के संग-संग रंग-रजित मोहक फूलों में ।।
चलते हरीतिमा से छाये, नयनों की बन अमिट पिपासा।
प्राणों के पोषक रस जैसे, भावुक उर की मादक आशा।।
ग्रीष्म में शीत का सुखद राज्य भावों का उन्मेषक बन जाता।
शीत में विचारा शीत कांगड़ी के अंचल में छिप पल पाता।।
जब शीश रुपहला हिम-किरीट झलमल झलमल चमचम करता है।
तब हृदय स्वतः गौरव-गरिमा से पूरित हो नर्तन करता है ।।
गाता है काश्मीर भारत का स्वर्ग, स्वर्ग का दिव्य धाम है।
इस वसुन्धरा का मान प्राण जन-जन का अतिशय ही ललाम है।।

अकबर और काश्मीर

राम डोगरा

अकबर बादशाह को मुगल शासकों में सर्वोपरि मान प्राप्त है। इतिहास उनकी कार्यकुशलता को सदा के लिए दुहराता रहेगा। दिल्ली के तख्त पर बैठने के बाद भारतीय प्रदेशों पर क्रमशः उनका अधिकार बढ़ता चला गया और तभी वे काश्मीर में पदार्पण करने का सुअवसर देखने लगे।

सन् १५८०—८५ ईस्वी के बीच काश्मीर में जिन यवन राजाओं का शासन था, वे परस्पर लड़ाई-झगड़ों में पड़े हुए थे। राजा अलीखान के मरने पर उसके पुत्र यूसुफशाह ने काश्मीर पर अधिकार करना चाहा। परन्तु उसके चाचा अब्दुलखान ने उसका विरोध किया। सिकन्दरपुर में उन दोनों की लड़ाई हुई जिसमें अब्दुलखान मारा गया। परन्तु उसका हितैषी मुबारकखान यूसुफखान से भिड़ गया और यूसुफखान का सेनापति मुहम्मदखान खेत रहा। यूं मुबारक खान काश्मीर का शासक बन बैठा।

यूसुफखान ने दिल्ली जाकर शरण ली। इधर चक लोगों ने मुबारक खान को हरा कर लोहर चक को काश्मीर का राजा बना दिया। यूसुफखान के दिल्लो से लौटने पर लोहर चक उससे लड़ने गया। इस लड़ाई में उसका वज़ीर अब्दुलमीर काम आया और यूसुफखान ने पुनः काश्मीर की गद्दी पाई। लोहरखान ने याकूबखान की शरण ली। किन्तु उस निर्दयी ने लोहर खान व उसके भाई की आंखें निकाल लीं। फिर हैदर चक के साथ याकूब खान का संग्राम छिड़ गया। वहां से भाग कर हैदरचक अकबर बादशाह के पास चला गया।

तदनन्तर पुनः शासक बन कर यूसुफखान ने बहुत-सा उपहार द्रव्य देकर अपने पुत्र को अकबर बादशाह के पास भेजा। सम्राट अकबर ने वह उपहार स्वीकार करते हुए भी; काश्मीर पर अधिकार की स्वेच्छा को नहीं त्यागा। उन्होंने अपने सेनापति भगवान् दास को काश्मीर भेज दिया। तत्पश्चात् थोड़े दिनों तक काश्मीर का शासन कर वह स्वयमेव सम्राट की सेवा के लिए चला गया। तब उसके पुत्र याकूब खान ने काश्मीर का राज्य सम्भाला। उस समय शम्स चक ने अति क्रुद्ध होकर उस से युद्ध किया परन्तु हार कर मैदान से भाग गया।

उधर सम्राट अकबर की काश्मीर-विजय की अभिलाषा ने ज़ोर पकड़ा। उन्होंने बहुत बड़ी सेना के साथ प्रधान सेनाध्यक्ष कासिम खान के अधीन बाईस सेनापति काश्मीर में भेज दिये।

कासिम खान को दल-बल सहित आता देख कर याकूब खान भाग गया और उसकी सेना भी तितर-बितर हो गई। तब शम्स चक ने थोड़ी सी फौज लेकर कासिम खान से मुकाबला किया। परन्तु मुगलों की जीत हुई। चक लोगों ने हैदर चक को कासिम खान को लाते देखा था, जिससे बहुत लोग उसके साथ हो गए। तब कासिम खान ने अनेक लोगों के साथ साथ हैदर चक को पकड़ा था। उसके भय से काश्मीर के असंख्य प्रजा-जन जंगल में भाग गए। वहां सब लोगों ने मिल कर युद्ध की बात ठानी और याकूब खान को आगे किया।

तब कासिमखान ने मोमारखान को याकूबखान के विरुद्ध भेजा था। याकूबखान ने सदाशिवपुर में उसकी सेना पर हमला किया। कश्मीर की बड़ी सेना देखकर कासिमखान ने कारागार में पड़े हैदर चक को मार डाला। बाद में वह याकूबखान से लड़ने लगा। उस युद्ध में हार-जीत का कोई परिणाम नहीं निकला और याकूबखान किश्तवाड़ की ओर चला गया। इस बीच उसके पिता यूसुफखान व अन्यान्य सम्भ्रांत व्यक्तियों ने सन्धि की बात छेड़ी। तदनुसार कासिमखान ने यूसुफखान और उसके साथियों को बादशाह अकबर के पास भेज दिया। बादशाह ने बड़े आदर से उनको आश्रय दिया।

इधर कश्मीर में हिमपात आरंभ हो गया। याकूबखान ने सेना सहित किश्तवाड़ से निकल कर पुनः मुगल सेना पर धावा बोल दिया। तीन मास तक युद्ध हुआ। जब कासिमखान की पराजय की बात फैली तो अकबर ने यूसुफखान को कश्मीर विजय के लिये उत्साहित किया। उसने वहां जाकर याकूबखान को ठिकाने लगाया और पुनः बादशाह के पास लौट आया। इस प्रकार सन १५८६ ई० में कश्मीर अकबर के अधीन आया। बादशाह ने कश्मीर को देखने के लिये लाहौर से प्रस्थान किया। बादशाह के वहां पहुंचने पर याकूबखान ने उनसे शरण देने की

प्रार्थना की। अकबर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, उसे राजा मानसिंह के अधीन सेनानायक बना दिया और कश्मीर का राज्य प्रबन्ध यूसुफखान को सौंप कर चला गया। अभी यूसुफखान ने शासनकार्य आरंभ किया ही था कि वह बादशाह के कोप का शिकार हो गया। परिणामस्वरूप बादशाह ने काजीअला को कश्मीर का शासक बनाकर भेजा। उसने कुछ ही समय बाद खज़ाने का सारा धन समाप्त कर डाला। फलतः मुगल अधिकारियों में असन्तोष पैदा हो गया और मिर्ज़ा यादगार नामक सरदार ने स्थानीय लोगों से मिलकर उनकी सहायता से काजीअला को लड़ाई में पराजित कर दिया। वह पहाड़ों में भाग गया और वहीं मर गया।

मिर्ज़ा यादगार ने कश्मीर का शासक बन कर मुगल सत्ता की कोई परवाह नहीं की। तब सम्राट ने शेख फरीद को सेना सहित काश्मीर भेजा। शूरपुर में मिर्जा यादगार अपने ही नौकरों द्वारा मारा गया। तब शेख फरीद वहां का शासक बनाया गया। उसने अनेक सत्कार्य किए। उस ने सुना कि किसी भय से काश्मीर के हिन्दू (ब्राह्मण) यहां से भाग रहे हैं। बादशाह ने सर्वप्रथम चक वंशियों से कर लेना बन्द कर दिया। फिर घोषणा करवाई कि जो कोई यहां के हिन्दूओं (ब्राह्मणों) की पूजा करेगा, उसको तत्क्षण इनाम दिया जाएगा और जो इनसे कर लेगा, उसे कठोर दण्ड मिलेगा। यह सुख-संवाद सुन कर काश्मीरी ब्राह्मण वर्ग अति प्रसन्न हुआ और बादशाह ने अपने कर्मचारी राम दास को खास तौर पर काश्मीरी ब्राह्मणों का कल्याण करने का आदेश दिया। वह अधिकारी यहां के विप्र-वृन्द को सोना, चांदी आदि समर्पण करता था। इस बात का उसे कोई घमण्ड न था। सुना जाता है कि उसने हर एक काश्मीरी-पण्डित के घर सौ सौ रुपये और एक-एक अशरफी बांटी थी। बादशाह स्वयं काश्मीरी ब्राह्मणों को विशेष सन्तुष्ट रखते थे। एक बार उन्होंने हज़ार स्वर्ण मुद्रायें निर्धन-ब्राह्मणों को दान में दे डालीं।

कुछ दिनों के बाद बादशाह ने पुनः यूसुफ खान को काश्मीर का बादशाह बना दिया। वह प्रजा की भलाई का ध्यान रख कर राज-कार्य करने लगा। फिर समय पाकर वह स्वयं बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और उसका पुत्र मिर्ज़ा लश्कर काश्मीर का शासक नियुक्त हुआ।

राज्य-शासक बनते ही उसने यह आदेश निकाला कि जो व्यक्ति काश्मीर निवासियों को तंग करेगा, वह सद्यः अपने अपराध का दण्ड भोगेगा। उसके आठ वर्ष तक शासन करने के बाद बादशाह ने पहले अशाह खान और पीछे अहला खान व सुलतान मुहम्मद कुली खान को काश्मीर का शासन भार दिया। उन दोनों ने स्थानीय दुर्नीति को समाप्त कर दिया। कहते हैं कि बादशाह की आज्ञानुसार ही उन्होंने प्रवरपुर के समीप एक अग नाम का किला

ग्रौर शारिका-गिरि के पास एक नग नाम का नगर निर्माण किया था। ऐसा भी सुना जाता है कि वर्तमान श्रीनगर जैन-उल-ग्राब्दीन द्वारा निर्मित प्राचीन नगरी के निकट ही बना था। किसी रोज दोपहर में नगरी ग्रचानक ही जलने लगी ग्रौर दो हज़ार घरों के साथ साथ वह नगरी शीघ्र ही भस्मसात् हो गई। उस समय नवीन नगरी, सौत की मौत से प्रसन्नमुखी रमणी की तरह फूल कर ग्रानन्द प्रकटाने लगी।

काश्मीर बादशाह ग्रकबर के पुत्र जहांगीर का परम प्रिय स्थान था। वह ग्रपनी प्रियतमा नूर जहान के साथ सदा यहां बसन्त-क्रीड़ा किया करता था। ग्राज भी वहां बेगम नूरजहान् के सुन्दर लीला-उपवन ग्रौर मनोहर महल के दृश्य दिखाई देते हैं।

बादशाह ग्रकबर के बाद भी जब तक दिल्ली के मुगल शासकों का प्रभाव यथावत रहा, तब तक काश्मीर उनके ग्राधीन रहा। उस समय कोई न कोई शासक, दिल्ली के ग्राधीन होकर ही यहां का शासन-कार्य चलाता था। सन् १७५२ ईस्वी में पठान वीर ग्रहमद शाह दुर्रानी ने काश्मीर को जीता ग्रौर कुछ काल तक यहां पठानों का ग्रधिकार रहा।

कहना न होगा कि बादशाह ग्रकबर की चलाई नीति का भली-भान्ति पालन-पोषण, केवल उन्हीं के साथ होता रहा। तत्पश्चात् क्रमशः उत्तराधिकारियों में मजहबी गरूर भरता गया ग्रौर सब जगह उसका ग्रसर पड़ने लगा जिससे काश्मीर भी ग्रनेक परिवर्तनों में ढला। परन्तु ग्राज ग्राज़ाद भारत के साथ इसका वही ग्रकबरी-शासन-सम्बन्ध स्थापित हो गया है, जो ग्रनेक विरोधों का मुंह मोड़ कर, ग्रटूट एवं ग्रक्षुण्ण घोषित हो चुका है।

'धर्म मार्ग' में विज्ञापन की दरें :—

पूरा पृष्ठ ...	एक बार	...	वर्ष भर तक (१२ ग्रंकों में)
ग्रावरण पर (पीछे की ग्रोर)	रु० १००	...	रु० १०००
ग्रावरण पर (ग्रन्दर की ग्रोर)	रु० ७५	...	रु० ७००
ग्रन्दर के पृष्ठों पर (संपूर्ण)	रु० ५०	...	रु० ५००
,, ,, ,, (प्रति वर्ग इंच)	रु० १	...	

ईशबर : गुप्त गंगा

अवतार कृष्ण राजदान

काश्मीर संसार में देवभूमि के नाम से सुविख्यात है। यहां का प्रत्येक स्थान—झील, नदी, चश्मा, गगन-चुम्बी पर्वतमालाएं किसी न किसी देवी देवता से सम्बन्ध रखता है। यही कारण है कि ये यहां के निवासियों की आस्था के आधार बन गये हैं। यहां का कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहां भगवान शंकर ने अपने भक्तों के लिये मोक्ष का द्वार खुला न रखा हो। अमरनाथ, हरमुख गंगा, तारसर और मारसर—ये सभी तीर्थ भगवान शिव से सम्बन्ध रखते हैं तथा प्रति वर्ष भारत के अन्य भागों से लोग बड़ी श्रद्धा एवं हर्षोल्लास से इन तीर्थों की यात्रा करने आते हैं। इन्हीं तीर्थों में एक सुरम्य तीर्थ है—ईशबर : गुप्त गंगा, जो प्राचीनकाल से ही यहां के कई शिव भक्तों की निर्वाण-प्राप्ति का स्थान रहा है। इसी स्थान पर महान योगी ईशान देव, शैव दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित अभिनव गुप्त तथा विद्वत शिरोमणि महात्मा केशव भट्ट ने आध्यात्म की साधना तथा अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया था। ईशबर श्रीनगर से ९ मील की दूरी पर प्रसिद्ध मुगलकालीन निशात एवं शालीमार बागों के मध्य तथा डल झील से दो मील दूर है। यह एक सुन्दर एवं छोटा सा गांव है जिसके अंचल में प्रकृति का दिव्य-सौन्दर्य तथा आध्यात्म की पुण्य विभूति विपुल परिमाण में संचित है। श्रीनगर से यहां आने के लिए दो मार्ग हैं। इन में से एक महाराजा हरिसिंह द्वारा निर्मित बुलवार्ड रोड है। इस मार्ग पर यहां का एक और प्रसिद्ध तीर्थ पड़ता है जिसका नाम है "जीटयोर"। यहां माता ज्येष्ठा की स्थापना है। प्रति वृहस्पतिवार को यहां मेला लगता है और बलि चढ़ाई जाती है। इसके दूसरे मार्ग के विषय में यह किंवदन्ति प्रचलित है : 'काश्मीर की ऋषि वाटिका (रैनावारी) में एक महात्मा रहते थे। वह नित्य गुप्त गंगा में स्नान करते थे। रैणावारी तथा गुप्त गंगा के मध्य काफी दूरी के कारण वे समय पर स्नान करने के लिए नहीं पहुंच पाते थे। उन्होंने तपस्या द्वारा माता ज्येष्ठा को सन्तुष्ट किया तथा रैणावारी से गुप्त गंगा तक भक्तों के लिए सुविधाजनक

मार्ग निकालने की प्रार्थना की। महात्मा की प्रार्थना को माता ज्येष्ठा ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने रैणावारी से एक सांप छोड़ा जो रेंगता हुआ गुप्त गंगा तक पहुंचा। महात्मा ने सांप के रेंगने पर निशान लगा दिये तथा दोनों ओर मिट्टी छोड़ दी जिसने एक सड़क का रूप धारण कर लिया। यह रास्ता सांप की तरह बल खाता हुआ दीख पड़ता है तथा रैणावारी से चार मील दूर है। ऐतिहासिक सूत्रों का कहना है कि यह रास्ता काश्मीर के सुलतान सिकन्दर 'बुतशिकन' ने बनवाया था। कहा जाता है कि ईशबर के मन्दिर में काश्मीरी भक्ति साहित्य की पुस्तकों का विपुल भण्डार था। सुलतान हिन्दू धर्म का विरोधी था, इस लिए वह काश्मीर के सभी हिन्दू मन्दिरों को नष्ट करके ईशबर की ओर चल पड़ा। उस ने सभी पुस्तकों को डल झील के पानी में डुबो दिया। इस बात का संकेत मिलता है कि आज से ७०० वर्ष पूर्व ईशबर विद्या, बुद्धि, धर्म एवं सस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र रहा होगा। कल्हण कृत राजतरंगिणी इस बात का समर्थन करती है।

"ईशबर" का अर्थ है भगवान शिव का घर। 'बर' कश्मीरी में द्वार को कहते हैं। अतः शिव इसी द्वार से गुज़र कर अपने गृह की ओर प्रवेश करते हैं। 'बर' का दूसरा अर्थ है धारण करना या पोषण करना अर्थात शिव द्वारा पोषित किया गया। अपने उदय के ऐतिहासिक प्रसंगों में 'ईशबर' को ईशेश्वर, सरेशवरी आदि का पद भी मिला है। गुरु ईशान देव जो एक तपस्वी एवं धर्म निष्ठ साधु थे, के नाम पर यह ईशेश्वर कहलाता है। यहां चारों ओर अनेक आश्रम थे जिन में आध्यात्म की साधना होती थी तथा सहस्त्रों की संख्या में साधु सन्यासी भगवान शंकर की स्तुति में लीन रहते थे। ईशान इन सबों के गुरु थे। तत्कालीन राजा समदिमत ने इन्हीं के नाम पर यहां एक विशाल मन्दिर निर्माण किया था जिस के अवशेष आज भी दिखाई पड़ते हैं।

गुरु ईशान देव के नाम पर इसको ईशेश्वर कहना——इस सम्बंध में एक और ऐतिहासिक प्रसंग दृष्टव्य है। कलियुग में महाराजा इन्द्र समधिमत मंत्री के सहयोग एव सहायता से अपने पिता के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। कुछ समय तक इन्हों ने जनता के साथ सहानुभूति, सदभावना एवं कृपालुता के साथ व्यवहार किया। परन्तु बाद में इनके कुशासन की चर्चा घर-घर में होने लगी। फलस्वरूप उनका मंत्री के साथ मतभेद रहने लगा। उन्होंने मंत्री को दस वर्ष तक कारागार में रखने की सज़ा सुनाई। इस से जनता में बेचैनी फैल गई। जनता ने राजा को राजपद से हटाने की योजना बनायी। जब यह समाचार राजा तक पहुंचा तो उन्होंने मंत्री का वध कर डाला। राजा ने यह दुष्कार्य जनता की इच्छा के विरुद्ध किया था। इसलिए उन्हें जनता की ओर से मारे जाने का ख़तरा था। इस संकटमय स्थिति से बचने के लिए राजा के पास कोई उपाय नहीं था। अतः ३७ वर्ष की शासनावधि में ही भय और उन्मत्तता से राजा इस दुनिया से चल बसे।

राजा के दाह-संस्कार पर उनके धर्म-गुरु एवं निजी निरीक्षक ईशान देव उपस्थित थे । अब कश्मीर राज्य शासकरहित था, इसलिए शासक की तलाश का उत्तर-दायित्व उन्हीं पर था। उन्होंने जनता की इच्छा पर अपनी योग-माया से मंत्री के मृत शव में प्राण फूक दिये जो कश्मीर के नये राजा हुए । अपने गुरु के श्रद्धा स्वरूप उन्होंने दो विशाल मंदिरों का निर्माण किया। एक का नाम 'संधेश्वर' है तथा दूसरे का 'ईशेश्वर'। पहला मंदिर उस जगह पर है जहां राजा ने मंत्री का वध किया था तथा दूसरा ईशानदेव के नाम पर उनके आश्रम के निकट है जहां वह अध्यात्म-साधना में तत्पर रहते थे । इसी मंदिर के नाम पर 'ईशबर' गांव का नाम ईशेश्वर पड़ गया ।

'सुरेश्वर' का अभिधान भगवान शंकर के नाट्यस्थल का संकेत है। यह एक पहाड़ी है जिस के संबंध में कहा जाता है कि यह शक्ति की विहार-भूमि है तथा प्रति दिन प्रदोष के समय यहां शिव और शक्ति का नृत्य होता है । यह सुरम्य पर्वतीय क्षेत्र निशात बाग से ज़रा नीचे तथा डल झील से दो मील की दूरी पर स्थित है । यह एक महान तीर्थ है जहां शिव और शक्ति के नृत्य में सभी देवी-देवताओं का साथ रहता था । यहां के चारों ओर कई सर पाये जाते हैं जिन में एक 'शतधारा' का नाम उल्लेखनीय है । यह भी एक तीर्थ है जो सुरेश्वर पर्वत पर ईशान गांव से १५०० फीट ऊपर है । शतधारा का वर्णन क्षेमेन्द्र की पुस्तकों में भी हुआ है। ईशबर गांव में सुरेश्वर तीर्थ का महत्वपूण स्थान है, इस लिए इस सारे गांव को सुरेश्वर के नाम से भी पुकारा जाता है।

यह सर्व विदित है कि जहां शिव है वहां शक्ति का होना अनिवार्य है। शिव की जटाओं से निःसृत गंगा की धारा शक्ति का ही प्रतीक है। वास्तव में शक्ति एक प्रवाह है जो लोकों की सर्जनात्मक परंपरा का पोषण करती है। ईशबर में शिव और शक्ति दोनों का वास है, इसलिए यहां भी शिव को जटाओं में गुप्त रूप से निवास करने वाली गंगा की प्रतिष्ठा है। इसको गुप्त गंगा कहते हैं क्योंकि यहां महादेवी गौरी से छिपकर बैठी हुई है। अपने उदय ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रसंगों में इसको गुप्ताचार्य गंगा, पाताल गंगा आदि का पद भी मिला है । कश्मीरी शैव-दर्शन के मीमांसक अभिनवगुप्त ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार इसी गंगा के तट पर किया था, इसलिए इसे गुप्ताचार्य गंगा कहते हैं। पौराणिक प्रसंग अनुसार यहां पर एक असुर रहता था। वह देवी-देवताओं को बहुत तंग करता था। उन्होंने भगवान शंकर से असुर को मारने के लिए प्रार्थना की। शंकर ने प्रार्थना स्वीकार कर ली तथा असुर को मारने के लिए त्रिशूल उठाया। असुर तो मर गया परन्तु इन्होंने मरने से पहले गुप्त गंगा को पाताल में ले लिया। इसीलिए यह 'पाताल गंगा' के नाम से अभिहित की जाती है। वास्तव में इन सभी नामों से बढ़कर यह गुप्त गंगा के नाम से ही संसार में सुविख्यात है ।

कश्मीर की प्रत्येक नदी को गंगा की उदार विभूति का वरदान मिला है। यहां की

नदियों का पुण्य पय गंगा की धारा के समान शीतल, स्वच्छ तथा पोषित करने वाला है। परन्तु गुप्त गंगा की व्यापक महिमा ने सभी नदियों को अपने समान पवित्रता प्रदान की है। यहां पर प्रातःकालीन स्नान करना एक धार्मिक नित्य-कर्म है जिस से मुक्ति मिलती है। कश्मीर के सुदूर स्थानों के निवासी बड़े उत्साह, श्रम एवं चाव से यहां स्नान करने के लिए आते हैं। गुप्त गंगा का स्नान करना अत्यन्त पुण्यदायक है। **माघ, कार्तिक, जन्माष्टमी, संक्रान्ति, ग्रहण, कुम्भ के साथ-साथ वैशाखी के पुनीत अवसर पर यहां सहस्रों की संख्या में लोग स्नान करके आत्मिक एकता का अनुभव करते हैं।** इतना ही नहीं बल्कि इसके तट पर भगवान शंकर की प्रार्थना करने से समस्त दुखों का निवारण होता है तथा अपनी अनन्त अभिलाषाएं पूरी हो जाती हैं। अणुमात्र का दान महाफल का कारण बन जाता है, ओज मिलता है, बुद्धि एव ऐश्वर्य का विकास होता है।

गुप्तगंगा सुरेश्वरी (शतधारा) से बहकर ईशबर गांव में ठहरती है। पौराणिक परंपरा में गुप्त-गगा के विषय में कहा गया है कि यह ईशबर से शालामार बाग होती हुई डल झील तक फैली हुई है। यह सारा क्षेत्र ईशेश्वर के चारों ओर फैला हुआ है। इस से गुप्त गंगा के उद्गम तथा विकास की वैज्ञानिक एवं पौराणिक धाराओं में एक स्थानीय संगति बन जाती है। ईशेश्वर मानो शिव का साकार रूप तथा शीश है। इसी से गुप्त-गंगा की शीतल, स्वच्छ तथा प्रेरणाप्रद धारा का प्रवाह होता है।

गुप्तगंगा के तट पर विभिन्न तीर्थ पाये जाते हैं जो अपनी व्यापक महिमा के कारण यहां के सहस्रों लोगों को विशेष दिनों पर अपनी ओर खींच लेते हैं। ये सभी शिव-तीर्थ यहां एकता की सुदृढ़ ग्रंथियां बनाते हैं। इन सब का वर्णन नीचे क्रमबद्ध किया जा रहा है——१ 'शतधारा' का अर्थ है सहस्रों धारा वाला। 'शतधारा' के संबंध में 'भृगेश-संहिता' में वर्णित है कि जब देवी-देवता प्रमत्त दानव के कष्ट से तंग आये तो उन्होंने ॐ स्वरूप भगवान शिव की स्तुति की। इस से शिव बहुत प्रसन्न हुए तथा गंगा के पानी को 'शतधारा' में विभाजित किया। फलस्वरूप इस तीर्थ का नाम 'शतधारा' पड़ गया जो सुरेश्वरी के ज़रा नीचे तथा 'ईशबर' गांव से १५०० फीट ऊपर है। यहां पर पत्थरों की एक कोठरी है जहां से जल का प्रवाह होता है। यहां स्नान करने से दुसाध्य रोग नष्ट हो जाते हैं। श्राद्ध करने से पितरों को मुक्ति मिलती है।

२ अलोखल तीर्थ—'अलोखल' का अर्थ है ओखली। यह तीर्थ 'शतधारा' के ठीक दूसरी तरफ है। यहां पर एक बहुत बड़ी चट्टान है जिस पर असंख्य ओखलियां हैं। किंवदंति है कि यहां से ही जगदम्बा जी खाद्य पदार्थों को कूट कर अपने भक्तों को भेजा करती हैं।

३ गुप्त तीर्थ—यह एक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहां एक छोटी सी झील है जिस में स्नान करने से तत्क्षण पापों का नाश होता है।

४ नारायण गंगा – यह तीर्थ भगवान सूर्य का प्रतीक है। यहां पर भगवान सूर्य प्रकाश के रूप से अपने नाम को सार्थक करते हैं। आज से ४० वर्ष पूर्व यहां सूर्य देव की विशाल मूर्ति एक खण्डहर पर विराजमान थी, परन्तु अब यह नहीं पायी जाती है।

५ चक्रेश्वर – यह तीर्थ गुप्त गंगा के दूसरी तरफ है। यहां भी सूर्य देव की स्थापना है।

६ सप्तऋषियों का तीर्थ—यह तीर्थ ईशबर गांव से तीन मील की दूरी पर स्थित है। किंवदंति है कि यहां सप्त ऋषि प्रत्यक्ष आकर बैठे हुए हैं। यहां स्नान करने से सभी दुसाध्य रोग नष्ट हो जाते हैं।

७ मत्स्य भवन—ईशबर ग्राम से गुज़रते ही यह तीर्थ रास्ते में पड़ता है। यह एक प्रमुख पितृ तीर्थ है। पितरों की मुक्ति एवं तृप्ति के लिए यहां श्राद्ध तथा तर्पण किया जाता है।

अपनी इस व्यापक महिमा के कारण गुप्त-गंगा कश्मीर की सांस्कृतिक एकता के सरस तथा सुदृढ़ सूत्र का निर्माण करती है। यहां जिस चीज़ की कामना की जाती है, वह तत्क्षण पूरी हो जाती है। प्रसिद्ध है कि अवन्तिवर्मन ने सूय्या की सहायता से कश्मीरी जनता को भाड़ों से बचाने का जो प्रयास किया था, उसमें अपनी सफलता के लिए उन्होंने यहां वैशाखी के दिन गंगा-स्नान किया था तथा गंगा तट पर भक्ति एवं श्रद्धा से भगवान शंकर की प्रार्थना की थी। खेद की बात है कि ईशबर जैसे समाधि योग्य स्थान की दशा दयनीय है। यहां पर एक नये मंदिर तया धर्मशाला के निर्माण की आवश्यकता है। इसकी कोख में बहती हुई गंगा की अविरल धारा जो मुक्तमाला के समान शीतल, सुखदायक, पवित्र और फलदायक है, का जल प्रवाह मार्ग के बिगड़ जाने से दुर्गन्धित तथा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक बन गया है। इसके घाटों को ठीक करने की ज़रूरत है ताकि यह सैलानियों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बने तथा अपने पूर्ववर्णित गौरव को पुनः प्राप्त कर सके।

बौद्ध धर्म और काश्मीर

जानकी नाथ गनहार

काश्मीर की जनता पर बौद्ध धर्म ने जो गहरी तथा अमिट छाप डाली है, वह उसकी धार्मिक सहिष्णुता विश्व-बन्धुत्व, करुणा तथा उदारता के उन गुणों में स्पष्ट प्रकट होती है जो वर्तमान समय में भी एक काश्मीरी के चरित्र के विशेष तथा अभिन्न अंग हैं। शताब्दियों से चलता आया यह सुखद प्रभाव शायद इस बात के लिए किसी भी तरह कम मात्रा में उत्तरदायी नहीं कि इस विशाल महाद्वीप के विभाजन के बाद जब भारत तथा पाकिस्तान सांप्रदायिक दंगों की ज्वाला में दहक रहे थे तब भी काश्मीर इन से पूर्णतया अछूता रहा तथा गान्धी जी के शब्दों में 'प्रकाश की एक किरण' की तरह चमकता रहा।

भारत उप-महाद्वीप के दूरस्थ कोने में स्थित तथा उच्च पर्वतमालाओं से मेखलाबद्ध यह मणि सदृश्य घाटी कोई अपरिचित नहीं। महाभारत युग जैसे दूरस्थ पूर्व काल में भी काश्मीर के सिन्धु तथा गंगा नदी के मैदानों में स्थित राज्यों के साथ सम्बन्ध रहे। काश्मीर उस राजमार्ग के निकट स्थित था जो भारत को अपने पश्चिम तथा उत्तर में स्थित देशों से मिलाता था।

गंगा तथा यमुना के कूलों तथा कुंजों में उद्भावित तथा प्रतिपादित नई विचार-धाराओं तथा आध्यात्मिक सिद्धान्तों को इस एकान्त घाटी तक पहुंचने में ज्यादा समय नहीं लगता था। लगता है बुद्ध भगवान द्वारा प्रतिपादित धर्म के प्रति ऐसा ही हुआ होगा जिन्होंने अपने शिष्यों को यह आदेश दिया था :

"तुम जगत के सब देशों में जा कर इस धर्म का प्रचार करो। कहो कि इस मत में छोटे और बड़े सब एक हैं तथा इस में सब जातियां वैसे ही एक हो जाती हैं जैसे सागर में नदियां।"

यह बात निश्चित रूप से ज्ञात नहीं कि काश्मीर में बौद्ध धर्म का आगमन कब हुआ। लंका के आलेखों के अनुसार काश्मीर में सर्वप्रथम बौद्ध धर्म प्रचलित करने का श्रेय सम्राट अशोक को दिया जाता है। किन्तु यह धारणा सही नहीं है। काश्मीर घाटी में बुद्ध-वाद स्थानीय शासक सुरेन्द्र के काल में प्रचलित था जो सम्राट अशोक से कुछ समय पूर्व हुए हैं। यह तथ्य काश्मीर के प्रसिद्ध प्राचीन इतिहासकार कल्हण पण्डित की राजतरंगिणी से स्पष्ट है। परन्तु इस बात में भी कोई सन्देह नहीं है कि प्रख्यात सम्राट के सुखद-शासन काल में इस नये धर्म का दूर दूर तक प्रचार हुआ।

इसका कारण था बौद्ध-भिक्षुओं तथा श्रमणों का भारी संख्या में काश्मीर आना। कहा जाता है कि सम्राट अशोक स्वयं काश्मीर पधारे थे। कल्हण ने स्पष्ट रूप से यह वर्णन किया है कि सम्राट ने कुछ बौद्ध तथा शैव विहारों तथा मन्दिरों की रचना की थी। बौद्ध भवन अशोककालीन राजधानी श्रीनगरी (श्रीनगर के दक्षिण-पूर्व में स्थित पांद्रेठन) तथा वितस्तात्र (वैथवोथ्हुर) तथा शुष्कलेत्र (हुक्कालित्र) जो श्रीनगर से क्रमशः ५० तथा १८ मील दूर हैं, में स्थापित किये गए थे। कहा जाता है कि जो चैत्य सम्राट अशोक ने वितस्तात्र के धर्मारण्य विहार में बनवाया था, वह इतना ऊंचा था कि उसकी ऊंचाई का निर्णय करने में दर्शकों की आंखें असमर्थ थीं।

अशोक के उत्तराधिकारियों के काल में बौद्ध धर्म के प्रसार कार्य को काश्मीर में अस्थायी तौर पर धक्का पहुंचा। परन्तु तीन शताब्दियों के पश्चात कुषाणों के समय में यह मनोरम घाटी उत्तर भारत में बौद्ध दर्शन तथा विद्या के एक सर्वश्रेष्ठ केन्द्र के रूप में पुनः प्रतिष्ठित हुई।

कनिष्क द्वारा आयोजित जो चौथी बौद्ध महासभा काश्मीर में बुलाई गई, उस से तथा उनके उत्तराधिकारियों के समय में वस्तुतः घाटी के सब लोग इस धर्म के प्रभाव में आ गए। इस महासभा के फलस्वरूप भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से प्रख्यात बौद्ध भिक्षु, श्रमण तथा प्रकाण्ड आचार्य भारी संख्या में काश्मीर पधारे। तिब्बत के प्रसिद्ध इतिहासकार तारानाथ के अनुसार इस महासभा में ५०० अर्हत, ५०० बोधिसत्व तथा ५०० पंडित सम्मिलित हुए।

ह्यूनसांग तथा तारानाथ के अनुसार, इस महासभा का आयोजन विभिन्न शाखाओं द्वारा धर्म के बारे में प्रस्तुत परस्पर विरोधी परिभाषाओं के समाधान करने तथा विनय सूत्र तथा अभि-धर्म पुत्रः संपादित करने के लिए कहा गया था। ह्यूनसांग का कथन है कि महासभा ने अंत में इन तीन विभागों का प्रतिपादन किया और उन पर विभाषाएं तैयार की। इन विभाषाओं को साहित्यिक संस्कृत रूप तत्कालीन राजकवि अश्वघोष ने दिया, जो इस उद्देश्य के लिए काश्मीर आमंत्रित किये गए थे। महासभा में जो विभाषाएं तैयार की गई, उनको बड़ा सम्मान प्राप्त हुआ। ह्यूनसांग के अनुसार, इन में गहन गम्भीर पांडित्य तथा अनुसंधान का परिचय तथा बौद्ध साहित्य के विभिन्न विभागों तथा ब्राह्मण ग्रंथों तथा भारतीय वर्णमाला आदि के आसाधारण ज्ञान का परिचय भी मिलता है। महासभा में तैयार की गई इन विभाषाओं का कश्मीर से इतना घनिष्ठ सबंध था कि उनके रचयिताओं को चीनी भाषा में 'कश्मीर-शी' कहा जाता था।

बौद्ध महासभा के फलस्वरूप कश्मीर की दिव्य घाटी को उच्च सम्मान प्राप्त हुआ। कहा जाता है कि स्वयं सम्राट कनिष्क ने तथा अन्य मतानुसार कात्यायनीपुत्र ने आचार्यों,

भिक्षुओं द्वारा विभाषाओं का कश्मीर से बाहर ले जाना निषेध कर दिया था। अतः जो इन विद्याओं का अध्ययन करना चाहते थे, उन्हें स्वयं इस अभिप्राय पूर्ति के लिए कश्मीर आना पड़ता था। जो मुनिगण यहां पधारे होंगे उन में प्रायः अधिकतर यहां पर रहने के लिए मजबूर हुए होंगे। इसका श्रेय घाटी की प्राकृतिक सुषमा तथा धार्मिक सहिष्णुता तथा विचार स्वातन्त्र्य को प्राप्त होता है। अश्वघोष ने कई वर्षों तक इस सुन्दर घाटी में निवास किया।

महासभा का पुनीत कार्य सम्पन्न होने के पश्चात हमें एक ओर अभूतपूर्व प्रतिभावान दार्शनिक तथा बौद्ध तत्ववेत्ता नागार्जुन कश्मीर में विराजमान मिलते हैं। कश्मीर में उनका निवासस्थान वर्तमान हारवन' है। कल्हण के अनुसार, उनके योग्य निर्देशन में बौद्धों ने इस क्षेत्र के ब्राह्मणों को वाद विवाद में परास्त किया जिस के परिणामस्वरूप इस प्रदेश में प्राचीन धर्म समाप्त हुआ तथा लोगों ने परम्परागत रीति रिवाजों को त्यागा। किंतु दुर्भाग्यवश यह स्थिति ज्यादा देर तक नहीं रह सकी। लगातार कठिन जाड़ों के कारण कई बौद्ध भिक्षु मरे और अनेक घाटी को छोड़ कर चले गए। इस घटना ने ब्राह्मणों को पूजा की परम्परागत प्रथा पुनः स्थापित करने का सुअवसर प्रदान किया परन्तु इस में एक मुख्य अन्तर पड़ गया। स्वयं बुद्ध भगवान हिन्दू धर्म के देवताओं में सम्मिलित कर लिये गए। यही कारण है कि कश्मीर के प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथ 'नीलमत पुराण' में कश्मीर की हिन्दू जनता को वैशाख पूर्णिमा के पुण्य दिवस पर भगवान बुद्ध की पूजा-अर्चना का आदेश दिया गया है। कहा गया है कि इस दिन वे अपने मन्दिरों में भगवान बुद्ध की मूर्तियां स्थापित करें। मूर्तियों को सुगंधित जल में स्नान कराने के बाद उनकी पूजा बौद्धों की तरह करनी चाहिए। लोगों को इस दिन भजन कीर्तन तथा नाच करना चाहिए तथा बौद्ध भिक्षुओं को अन्न, वस्त्र, गोधन, पुस्तक दान आदि प्रदान करना चाहिए।

कश्मीर के साथ घनिष्ठ संबंध होने के कारण स्वयं बौद्ध धर्म में भी कुछ परिवर्तन हुआ है। बौद्ध धर्म की जो शाखा काश्मीर में प्रोत्साहित, विकसित तथा प्रसारित हुई उसका संबंध नागार्जुन से नहीं था अपितु वह अधिक यथार्थवादी सर्वास्तिवाद था। जैसा कि इसके नाम से विदित होता है इस मत के अनुसार भूत, वर्तमान तथा भविष्य में दृष्टि विषयक पदार्थों के अस्तित्व में विश्वास किया जाता है। मूर्ति पूजा तथा तंत्रवाद के विकास में कश्मीर ने जो हाथ बंटाया है उसका महत्व कुछ कम नहीं है।

यह प्रदेश बौद्धधर्मी देशों के लिए दीर्घकाल से महत्वपूर्ण रहा है। वास्तव में कश्मीर को बौद्ध विद्या तथा दर्शन के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में इतनी अधिक ख्याति प्राप्त थी कि समीपवर्ती देशों के विद्वान तथा आचार्य तब तक अपनी शिक्षा पूरी नहीं मानते थे जब तक वे

कश्मीर आकर यहां के गुरुजनों से विद्यार्जन न कर लेते। कश्मीर के प्रख्यात बौद्ध आचार्यों तथा भिक्षुओं को प्रायः समीपवर्ती देशों का भ्रमण करने के लिए आमंत्रित भी किया जाता था।

काश्मीर पधारने वाले सर्वाधिक प्रख्यात भिक्षु का नाम कुमारजीव था। वे कश्मीर के ही एक विद्वान कुमारायण के सुपुत्र थे, जो धर्म के प्रचार के लिए कुचा गए थे। वहां वे राजगुरु के पद पर आसीन हुए तथा स्थानीय नरेश की बहन 'जीवा' से विवाह किया जो उनपर मोहित हो गई थी। इस शुभ विवाह के बाद ३४३ ई० में कुमारजीव का जन्म हुआ था। उनकी माता उन्हें ६ वर्ष की आयु में ही शिक्षा-दीक्षा के लिए काश्मीर ले आईं तथा इस महान विद्वान प्रचारक ने अपनी आरम्भिक शिक्षा अपने पुरखों के ही देश में प्राप्त की। उन्होंने बौद्ध धर्म के साथ संस्कृत भाषा तथा वेदों का अध्ययन भी किया।

कुचा वापस आने पर कुमारजीव को बड़ा सम्मान प्राप्त हुआ तथा उनकी कीर्ति समीपवर्ती देशों के अतिरिक्त चीन में भी फैल गई जहां वह कुछ समय पश्चात गए थे।

चीन में उस समय 'यो चांग' राजगद्दी पर आसीन थे। उन्होंने कुमारजीव को राजगुरु की पदवी प्रदान की। कुमारजीव के आधीन आठ सौ विद्वानों तथा लेखपालों का एक भारी अमला रखा गया ताकि चीनी भाषा में बौद्ध धर्म ग्रंथों का अनुवाद किया जाय तथा जो अपूर्ण अनुवाद उनसे पहले मध्य एशियाई विद्वानों ने किए थे उनको ठीक किया जाये। यह महान कार्य उन्होंने अपने जीवन के अंत तक सम्पन्न किया। कुमारजीव १२ वर्ष चीन में रहे और इस अवधि में उन्होंने एक सौ से अधिक ग्रंथों का अनुवाद किया। एक चीनी लेखक के अनुसार उन्होंने ३०० से अधिक ग्रंथों का रूपान्तर किया। इन ग्रंथों में अश्वघोष, नागार्जुन, आर्यदेव जैसे महान आचार्यों की कृतियां भी शामिल थीं। भारत इस महान काश्मीरी विद्वान का केवल इसलिए आभारी नहीं है कि उन्होंने भारत जनित बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अभूतपूर्व काय किया, अपितु इसलिए भी कि उन्होंने हमें इन तीन तत्ववेत्ताओं के जीवन-चरित प्रदान किए। डॉ. के. एम. पणिकर के अनुसार कुमारजीव इन सर्वकालीन महान भारतीयों में एक हैं जिन्होंने सुदूर पूर्व के इतिहास पर अपनी गहरी छाप डाली है। उनका यह कथन यथार्थ है कि कुमार-जीव का नाम एक ऐसा नाम है जिसका भारत में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य को सदैव स्मरण तथा सम्मान करना चाहिए। यह बात भी अत्यन्त दिलचस्प है कि चीन में कुमारजीव को बौद्ध धर्म के चार आदित्यों में से एक माना जाता था।

काश्मीर के एक अन्य महान सपूत जो चीन गए थे उनका नाम गुणवर्मन था। वे भी कुमारजीव की तरह आरम्भिक जीवन में ही त्रिपटकाचार्य के रूप में प्रसिद्ध हुए थे। वे काश्मीर के एक राजपरिवार के वशज थे। उन्होंने धर्म प्रचार के लिए राजकीय पद का प्रस्ताव ठुकरा दिया।

काश्मीरी भिक्षु सिर्फ़ अपने समीपवर्ती देशों में ही नहीं अपितु इस विशाल महाद्वीप के दूर दूर के प्रदेशों में भी गए। उन में से अधिक भिक्षु तथा आचार्य आन्ध्र प्रदेश में स्थित श्री पर्वत के महान बौद्ध केन्द्र भी आते जाते थे जहां से आचार्य नागार्जुन काश्मीर आये थे। ३० वर्ष की आयु में गुणवर्मन ने अपनी मातृभूमि से प्रस्थान किया तथा भारत के दूर दूर प्रदेशों की यात्रा करने के बाद श्रीलंका गए। श्रीलंका से गुणवर्मन जावा गए जो उस समय एक समृद्ध तथा वैभवशाली हिन्दू राज्य था। वहां के राजा ने हिन्दू धर्म त्याग बौद्ध धर्म धारण कर लिया था उन के अनुरोध पर उन्होंने जावा की जनता में बौद्धवाद का प्रचार किया। इस कार्य से वे काफ़ी प्रख्यात हुए तथा उनको धर्म प्रचार करने के लिए चीन के भिक्षुओं से निमन्त्रण भी मिले।

गुणवर्मन ४२४ ई० में कैंटन पहुंचे। कैंटन से वे नानकिंग गए। चीन के सम्राट स्वयं उनसे मिलने आए तथा उनके शिष्य बने। किन्तु नियति को इस धर्म प्रचारक का अधिक काल तक जीवित रहना स्वीकार नहीं था और नानकिंग पहुंचने के एक वर्ष के भीतर ही वे ६५ वर्ष की आयु में परमधाम सिधार गए। इस थोड़ी अवधि में भी गुणवर्मन ने दर्जन-भर बौद्ध रचनाओं का अनुवाद किया और चीनी भिक्षुणियों के लिए एक संघ का आयोजन भी किया।

चतुर्थ शती ई० से चीनी भिक्षुओं का काश्मीर में आना प्रारम्भ हुआ। भारत में आने वाले चीनी यात्रियों के सिरमौर स्वनामधन्य ह्यूनसांग थे। वे काश्मीर में मई ६३१ से अप्रैल ६३३ ई० तक रहे। यह समय उस समय से अधिक है जो उन्होंने भारत के किसी भी और स्थान में व्यतीत किया।

उन दिनों काश्मीर में विद्या और ज्ञान का बहुत मान था। इसलिए चीन के उस महान विद्वान यात्री का यहां बड़े उत्साह से स्वागत-सत्कार किया गया। उनके सम्मान में किए गए एक विशेष समारोह में उनका तत्कालीन भिक्षुओं तथा विद्वान आचार्यों से साक्षात्कार कराया गया जिन से यह अनुरोध किया गया कि वे इस महान अतिथि यात्री के अध्ययन तथा अनुसंधान के लिए अपनी सहायता तथा सुविधाएं प्रदान करें। पांच नौकरों के अतिरिक्त राजा ने २० लेखपाल उनके आधीन रखे जिन को निर्देश थे कि वे उस किसी भी पुस्तक की प्रति उनके लिए तैयार करें जिसकी उनको आवश्यकता हो।

सातवीं शताब्दी से काश्मीरी भिक्षुओं तथा आचार्यों के बौद्ध धर्म के प्रसार तथा प्रचार करने के उत्साह को तिब्बत में फलित होने का शुभ अवसर मिला। उन दिनों तिब्बत में स्रांग-बचन-ज़ंग-पो राज्य करते थे। उन्होंने अपनी दो रानियों से प्रभावित हो कर बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। यह दोनों रानियां नेपाल तथा चीन की राजकुमारियां थीं। जैसा कि ऊपर

बताया गया है इस युग में काश्मीर विद्या तथा संस्कृति के एक अद्वितीय केन्द्र के रूप में विश्व-विख्यात था। अतः जब तिब्बत के शासक को तिब्बती बोली लिपिबद्ध करने का विचार आया तो उसने अपने विद्वान मन्त्री थोनमी समभाट को काश्मीर भेजा। समभोट ने यहां वर्षों तक अध्ययन किया तथा वापस जाने के बाद तिब्बती भाषा के लिए एक लिपि का निर्माण किया। तिब्बती बोली की इस लिपि का आधार काश्मीर की तत्कालीन प्रचलित नागरी लिपि ही है।

तिब्बत के जो भिक्षु तथा मुनि काश्मीर पधारे हैं उन में सर्वश्रेष्ठ रिन-चन-ज़ंग-पो थे। तिब्बत के स्वनामधन्य भिक्षुराज यशस-होद ने उनको काश्मीर में अध्ययन के लिए भेजा था। यशस-होद ने धर्म के लिए पश्चिमी तिब्बत में स्थित अपने राज्य को त्याग दिया था।

रिन-चन-ज़ंग-पो काश्मीर में दस वर्ष रहे और यहां उन्होंने संस्कृत तथा बौद्ध धर्म के अनेक ग्रन्थों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया। इस में नागार्जुन, आर्यदेव तथा वसुबन्धु की रचनायें भी शामिल थीं।

तिब्बत लौटने पर उन्होंने लद्दाख तथा पश्चिमी तिब्बत में बौद्ध गुम्पाएं स्थापित कीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक बौद्ध ग्रन्थों का तिब्बती में अनुवाद किया था। इस कार्य में भी काश्मीरी विद्वानों ने उनका हाथ बंटाया था, जिन में से कुछ एक को वे अपने साथ ले गए।

चीन तथा तिब्बत से बौद्ध धर्म मंगोलिया तथा अन्य देशों में भी प्रविष्ट हुआ। उन दिनों जो सम्मान मंगोल राजा तथा उनकी प्रजा काश्मीर तथा काश्मीरी विद्वानों तथा आचार्यों का करते थे वह वेनिस के प्रख्यात यात्री मार्कोपोलो के यात्रा वर्णन से स्पष्ट है। उन्होंने लिखा है—"ये लोग काश्मीर को अपने धर्म का आदि स्रोत मानते हैं।"

काश्मीर ने जो सहायता बौद्ध धर्म के प्रचार तथा प्रसार कार्य में की है, वह नालन्दा तथा विक्रमशिला के विख्यात विश्वविद्यालयों द्वारा भी हुई है। वहां पर काश्मीर के कुछ विद्वान आचार्य अध्यापन कार्य करते थे। ११वीं शताब्दी के आरम्भ में काश्मीर के एक प्रकाण्ड विद्वान जिनका नाम रत्नवज्र था, उन आचार्यों में एक थे जो विक्रमशिला विश्व-विद्यालय में काम करते थे। १२वीं शती के अन्त में एक और प्रकाण्ड काश्मीरी आचार्य शाक्य श्रीभद्र इस प्रसिद्ध विद्यापीठ के कुलपति थे।

काश्मीर की जनता पर बौद्ध धर्म ने जो गहरी तथा अमिट छाप डाली है, वह उसकी धार्मिक सहिष्णुता, विश्वबन्धुत्व, करुणा तथा उदारता के उन गुणों में स्पष्ट प्रकट होती है जो वर्तमान समय में भी एक काश्मीरी के चरित्र के विशेष तथा अभिन्न अंग हैं। शताब्दियों से चलता आया यह सुखद प्रभाव शायद इस बात के लिए किसी भी तरह कम मात्रा में उत्तरदायी नहीं कि इस विशाल महाद्वीप के विभाजन के बाद जब भारत तथा पाकिस्तान सांप्रदायिक दंगों की ज्वाला में दहक रहे थे तब भी काश्मीर इनसे पूर्णतया अछूता रहा तथा गान्धी जी के शब्दों में 'प्रकाश की एक किरण' की तरह चमकता रहा। ●●

अनन्तराम शास्त्री

रत्नाकर कवि

संस्कृत का महत्व भारतीय संस्कृति के प्रसार में केवल इतना ही नहीं कि यह हमारे धर्मग्रन्थों की भाषा है, प्रत्युत इससे कहीं अधिक है। भारत की प्रादेशिक भाषायें इसी की पुत्रियां हैं, उनका जीवन ही संस्कृत के कारण है। इस भाषा के कारण भारत के प्रांतों में परस्पर सांस्कृतिक एकता बनी हुई है। समग्र एशिया महाद्वीप को एकता के सूत्र में बांधने का श्लाघनीय कार्य भी हमारी देववाणी के द्वारा सम्पन्न हो सकता है। सिंहल, वर्मा, स्याम, कम्बोज, सुमात्रा, जावा आदि देशों की भाषाओं में आधे से अधिक शब्द संस्कृत के ही हैं। इन देशों में ब्राह्मणों ने अपने उपनिवेश बनाये और साथ ही संस्कृत भाषा व साहित्य का प्रचार भी किया। वहां की सभ्यता, वैदिक सभ्यता से अनुप्राणित है। मनु की व्यवस्था वहां भी उसी प्रकार मानी जाती है, जिस प्रकार भारत में। चातुर्वर्ण्य का सिद्धांत भारतीयों के समान इन देशों को भी मान्य था। बाली द्वीप में भारतीय संस्कृति तथा वैदिक धर्म अभी अपने जीते जागते स्वरूप में हैं। वहां के पण्डित लोग आज भी गायत्री मन्त्र का जप करते हैं। वे अपने घरेलू व्रतों में संस्कृत मन्त्रों का उच्चारण करते हैं, परन्तु भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण उनके अर्थ समझने में नितांत असमर्थ रहते हैं। ठीक यही दशा इस समय भारतीय भूखण्ड जम्मू कश्मीर राज्य की भी है। प्राचीन संस्कृत साहित्य का अवलोकन करने पर कोई यह नहीं कह सकता कि इस साहित्य के निर्माण कार्य में कश्मीर किसी से पीछे रहा होगा। संस्कृत साहित्य को इस प्रदेश ने जो कुछ दिया, उसका लोहा आज भी सभी मानते हैं। यहां के प्राचीन लेखक प्रायः आचार्य कोटि में आते हैं :

मास्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे।
इतीव स कृतो धात्रा कवि रत्नाकरोऽपरः॥

रत्नाकर कश्मीर के महाकवियों की रत्नमालिका के मध्यमणि थे। इनके काव्य मे कविता का लालित्य पूर्णतः परिलक्षित होता है। इनके पिता का नाम अमृतभानु था। ये 'बालबृहस्पति' की उपाधि धारण करनेवाले कश्मीर नरेश चिप्पट जयापीड (८०० ई०) के सभापण्डित थे। इस बात का उल्लेख इन्होंने अपने को "बालबृहस्पत्यनुजीविनः" लिख कर किया है। ये दीर्घजीवी प्रतीत होते हैं, क्योंकि कल्हण ने, इनके अवन्तिवर्मा के (८४४ - ५५) राज्यकाल में ख्याति प्राप्त होने की घटना का, उल्लेख किया है :

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः॥

अतः साधारण रीति से हम कह सकते हैं कि आप नवम शती के प्रथमार्ध में विद्यमान थे। आपके महाकाव्य का नाम 'हरविजय' है। यह संस्कृत के महाकाव्यों में परिमाण तथा गुण की दृष्टि से उत्तम काव्य माना जाता है। इसमें पूरे ५० सर्ग हैं। कम-से-कम इस काव्य के विपुल कलेवर का विस्तार ही इसकी

अद्वितीयता का सशक्त प्रमाण है। परन्तु काव्यगत गुणों के चमत्कारों के कारण भी यह अभूतपूर्व महाकाव्य है। रत्नाकर के समय माघ के काव्य के विपुल ख्याति थी। उस ख्याति को दबा डालने के उद्देश्य से प्रेरित होकर ही रत्नाकर ने इस महाकाव्य का प्रणयन किया होगा। माघ वैष्णव थे, उन्होंने अपने काव्य को "लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु" कहा है। उसी प्रकार शिवभक्त रत्नाकर के अपने काव्य को "चन्द्रार्धधूलचरिताश्रयचारु" लिखा है। कवि की इस गर्वोक्ति का कि इनकी ललित, मधुर, सालंकार प्रसाद-मनोहर, विकट यमक तथा श्लेष से मण्डित, चित्रमार्ग में अनन्य वाणी को सुनकर बृहस्पति का मन भी अशकित हो जाता है, कारण भी विद्यमान हैं :

ललितमधुराः सालंकाराः प्रसादमनोहराः, विकटयमकश्लेषोद्धारप्रबन्धनिरर्गला।
असदृशगतिश्चित्रे मार्गे ममोद्गिरतो गिरो, न खलु नृपतेश्चेतो वाचस्पतेरपि शंकते॥

काव्य का कथानक तो बहुत ही स्वल्प है—शिव द्वारा भस्मासुर का वध। परन्तु इसे अलंकृत, परिष्कृत तथा मांसल करने में कवि ने कुछ उठा नहीं रखा है। जलकेलि, सन्ध्या, चन्द्रोदय, समुद्रोल्लास, प्रसाधन, विरह तथा पानगोष्ठी आदि के वर्णन में १५ सर्ग हैं। भाषा सौन्दर्य, ललित-पदों की मैत्री, नवीन चमत्कारी अर्थ की कल्पना, अभिनव वर्णनों के उपन्यास तथा शब्दों के अद्भुत प्रभुत्व में यह महाकाव्य बेजोड़ है। यह कथन पुनरुक्तिमात्र होगा कि माघ सचमुच रत्नाकर के समक्ष काव्य प्रतिभा के प्रदर्शन में हतप्रभ से दीख पड़ते हैं। रत्नाकर का अध्यात्मशास्त्र का ज्ञान भी पूर्ण, बहुमुख तथा परिनिष्ठित था। छठे सर्ग में लगभग दो सौ सुन्दर श्लोकों में भगवान की बड़ी ही पाण्डित्यपूर्ण स्तुति है। इसके एक एक पद्य से इनका गहरा शास्त्रानुशीलन प्रकट होता है। ४७ वें सर्ग की 'चण्डिका स्तुति' इनके शाक्तागम का उच्च ज्ञान अभिव्यक्त कर रहो है। इस महनीय काव्य में ४३२१ श्लोक है, जिनमें वसन्ततिलका छन्द की बहुलता है। क्षेमेन्द्र ने रत्नाकर के वसन्ततिलका छन्द की प्रशंसा की है :

वसन्ततिलकारूढ़ा वाग्वल्लीगाढसंगिनी।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने॥

रात्रि के अंधकार में प्रियतम के घर गमन करने वाली अभिसारिकायें उपकार सूचित करने के लिये केशपाश के रूप में अंधकार को सिर चढ़ा रही हैं :

व्यक्तोपकारमधुना स्थगितासु दिक्षु प्रेयोगृहं सुखमलक्षितमेव यामः।
धम्मिल्लबन्धरुचिरैऽभिसारिकाभिः, प्रेम्णा तमश्चिरमितीव शिरोभिरूहे॥ १९.४३

भगवान की स्तुति का यह पद्य नितांत अभिराम है :

अपि बालकोटिशतभागविग्रहः, षडुपाधिकामपि विधाय पद्धतिम्।
स्थित एव भगवन्नहो भवान्, विदधाति चेतसि न कथं विस्मयम्॥ ६. ११७

अपने काव्य की महत्ता में रत्नाकर ने स्वयं जो निम्नांकित पद्य कहा है, वह वस्तुतः सत्य है :

हरविजय महाकवेः प्रतिज्ञां, शृणुत कृतप्रणयो मम प्रबन्धे।
अपि शिशुरकविः कविप्रभावान्, भवति कविश्च महाकविः क्रमेण॥

समाचार पंजोयन (केन्द्रीय) नियम, १९५६ के ८व नियम (संशोधित) से सम्बन्धित प्रेस और पुस्तक पंजोयन अधिनियम की धारा १९ डी की उपधारा (बी) के अन्तर्गत अपेक्षित जम्मू के 'धर्म मार्ग' नामक समाचार पत्र के स्वामित्व तथा अन्य बातों का विवरण :—

प्रपत्र चतुर्थ

(देखिए नियम ८)

१. प्रकाशन का स्थान :	धर्मार्थ ट्रस्ट, जम्मू व कश्मीर, जम्मू ।
२. प्रकाशन की आवर्तिता :	मासिक
३. मुद्रक का नाम :	विद्यासागर शर्मा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	धर्मार्थ ट्रस्ट, जम्मू व कश्मीर, जम्मू ।
४. प्रकाशक का नाम :	विद्यासागर शर्मा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	धर्मार्थ ट्रस्ट, जम्मू व कश्मीर, जम्मू ।
५. सम्पादक का नाम :	विद्यासागर शर्मा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	धर्मार्थ ट्रस्ट, जम्मू व कश्मीर, जम्मू ।

६. उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समाचार पत्र के स्वामी और भागीदार हैं या कुल पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के शेयर होल्डर हैं :— महाराजा डॉ. कर्णसिंह
एकमात्र न्यासधारी,
धर्मार्थ ट्रस्ट, जम्मू व कश्मीर, जम्मू ।

मैं, विद्यासागर शर्मा, घोषित करता हूं कि मेरी जानकारी के अनुसार ऊपर दिये गए विवरण सही हैं ।

विद्यासागर शर्मा
प्रकाशक के हस्ताक्षर

दिनांक १ मार्च, १९७१

समाचार दर्शन

- आदि कुमारी, सांझी छत तथा वैष्णो देवी में यात्रियों की सुविधा के लिये कई नई दुकानें खोलने का कार्यक्रम शीघ्र क्रियान्वित होगा। धर्मार्थ ने इस सम्बन्ध में टेंडर आमन्त्रित किए हैं। आशा है कि नई दुकानें खुलने से यात्रियों को सस्ते भाव पर सभी प्रकार की आवश्यकताएं सुलभ हो सकेंगी।

- महाशिवरात्रि का उत्सव जम्मू में बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। हज़ारों की संख्या में दर्शनार्थियों ने २३ फरवरी को पीर खो तथा श्री रणवीरेश्वर मन्दिर में जा कर शकर भगवान के दर्शन किए।

- शिवरात्रि की पूर्व सन्ध्या २२ फरवरी को आर्य समाज में प्रो. सतीश चन्द्र सांख्यधर ने स्वामी दयानन्द सरस्वती की स्मृति में एक कवि-सम्मेलन का संयोजन किया जिसकी अध्यक्षता श्री रणवीर संस्कृत संस्थान के निर्देशक श्री अनन्त मराल शास्त्री ने की। शिवरात्रि को सवेरे साढ़े आठ बजे तक ऋषि बोधोत्सव दिवस मनाया गया जिस में आधुनिक भारत के निर्माताओं में अग्रणी महर्षि दयानन्द सरस्वती को श्रद्धांजलियां अर्पित की गईं।

- चौदह फरवरी को सायंकाल अजमेर और किशन गढ़ के अनेक विद्वानों तथा जिज्ञासुओं ने एक सभा की और प्रति मास के प्रथम रविवार को अजमेर में वेदगोष्ठी का आयोजन करने का निश्चय किया। वेद गोष्ठी की प्रथम बैठक १४ मार्च को सायं ५ से ७ बजे तक वेद-संस्थान (बाबू मुहल्ला, ब्यावर रोड) में हुई। इस में श्री अभयदेव का 'वेद' शब्द का अर्थ और प्रतीकत्व तथा वेदों के तीन होने की मान्यता के विषय पर निबन्ध पढ़ा गया और फिर इस विषय पर चर्चा हुई।

लद्दाखी बाला

पृष्ठ भूमि : लेह के राजप्रसाद की

समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा
रजिस्टर्ड R. N. 19854/67

धर्म मार्ग

पोस्ट रजिस्टर्ड नं०
J. K.—163

क्षीर भवानी

श्रीनगर

(आवरण के सभी चित्र राज्य सूचना विभाग के सौजन्य से)

विद्यासागर शर्मा द्वारा धर्मार्थ ट्रस्ट, जम्मू व कश्मीर, जम्मू, के लिए सम्पादित, मुद्रित तथा प्रकाशित।
मुद्रणालय : चांद प्रेस, गुमट गेट, जम्मू (तवी)।